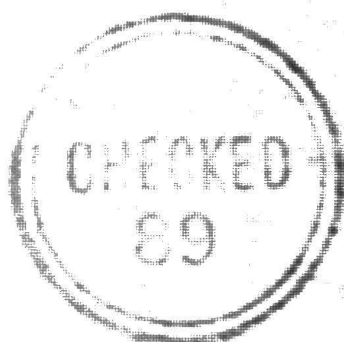

-कुशवाहा कान्त-

प्रकाशक
चिनगारी प्रकाशन
पो० बा० ७८
वाराणसी–1

संस्करण पञ्चम
१९६६

मूल्य 1–५०

मुद्रक
चिनगारी प्रेस
वाराणसी–१





सूर्यनारायण की अन्तिम आभा अब भी पृथ्वी पर कहीं-कहीं विद्यमान है। रात्रि के सघन अन्धकार ने अभी तक अपना हाथ पूर्णतया नहीं फैलाया है। चुनार अधीश्वर महाराज खंगबहादुर सिंह अभी-अभी ही ब्यालू करके उठे हैं। उसी समय चोपदार ने आकर खबर दी - 'महाराज ! एक आदमी आपसे मिलना चाहता है।'

महा०—'भेज दो।'

चोबदार चला गया और दो मिनट बाद उस सुसज्जित प्रकोष्ठ में एक लम्बे कद के आदमी ने प्रवेश करके महाराज खंगबहादुर को अभिवादन किया। उस मनुष्य का मुँह यद्यपि सूखा हुआ था, फिर भी ऐसा लगता था कि उसने बहुत दिनों तक विलास-वैभव में अपना जीवन व्यतीत किया है।

महाराज ने उससे पूछा—'तुम क्या चाहते हो और कौन हो ?'

वह आदमी सूखी हँसी हँसा, फिर बोला—'मैं जिस कार्य के लिए आपके पास आया हूँ वह बहुत आवश्यक है तथा आपके बहुत लाभ का है। शायद आपने मेरा नाम सुना होगा। मैं 'प्रेमनगर' का भूतपूर्व अधिश्वर रसिकरसाल हूँ।'

महाराज—'रसिकरसाल हो ! आप रसिकरसाल हैं !! आइये-आइये, इधर बैठिये।'

महाराज खंगबहादुर ने उस आदमी को इज्जत के साथ अपने पलंग पर बैठाया।

वह आदमी बोला—'समय का चक्र है महाराज! नहीं तो क्या आज मैं दर-दर की ठोकर खाता होता?....फिर भी मैंने आशा नहीं छोड़ी है। जब तक मैं अपने शत्रु विजयसिंह को नष्ट न कर लूँगा, विश्राम न लूँगा। पिछली दफे आप भी उसके हाथ से खूब ठगे गये महाराज, तभी तो आपने बिना जाने हुए ही अपनी पुत्री कनकलता की शादी उसके छोटे भाई से कर दी? खैर! बीती बातें भूल ही जाना अच्छा है। मुझे भी उस दुष्ट विजयसिंह ने कैद कर लिया था मगर मैं अवसर पाते ही निकल भागा।'

महाराज खंग०—'आपके इस समय यहाँ पधारने का कारण?'

रसिकरसाल—'देखिये, वह बात बहुत गुप्त है, परन्तु बिना किसी साथी के मैं अकेला उस कार्य में सफल नहीं हो सकता। इसीलिए मैं चाहता हूँ कि आपसे यह बात मैं विस्तारपूर्वक कह डालूँ और आप भी उसे सुनकर अपनी राय दें।'

कुछ देर रुककर वह पुनः बोला—'देखिये! रूपनगर के खंडहरों में एक भयानक पुतल की मूर्ति भी है। वह मूर्ति तिलस्मी है और ठीक आदमी की तरह बोलती है। एक दिन मैं उधर से गुजर रहा था तो देखा कि वह मूर्ति बोल रही है। वह कह रही थी—'आओ, मैं तुम्हें एक दूसरे देश में ले चलूँगा, जहाँ सोने के मकान हैं और मोतियों की वर्षा होती है।'—उसकी ये बातें सुनकर मैं भौंचक्का हो गया मगर बाद को पता लगा कि उस मूर्ति के नीचे से एक सुरंग एक दूसरे ही देश को गई है। वह देश बहुत धन-धान्य से पूर्ण है। उस देश में 'रक्त-मन्दिर' नामक एक भयानक मन्दिर है। उस मन्दिर में अगणित रत्न रक्खे हुए हैं।'

महा०—'आप स्वप्न की बात कर रहे हैं श्रीमान्।'

रसिक०—'नहीं महाराज! मैं सत्य कह रहा हूँ—कठोर सत्य!

यह बात कल्पना जगत की नहीं, वरन् स्थल जगत की है। मेरा इरादा उसी सुरङ्ग द्वारा उस अनोखे देश में चलकर 'रक्त-मन्दिर' की अगम धनराशि पर अधिकार करने का है। मैं आज ही प्रस्थान करना चाहता हूँ। मुझे आशा है कि आप भी अवश्य ही मेरा साथ देकर कृतार्थ करेंगे। प्राप्त धनों में हम लोग आधा-आधा बाँट लेंगे—इसके अतिरिक्त एक नये देश में चलने पर कितना कौतूहल और मनोरंजन होगा—इस पर भी ध्यान दीजिये महाराज !'

चुनार अधीश्वर कुछ सोचने लगे।

फिर बोले—'मुझे स्वीकार है महाराज रसिकरसाल ! मैं आपका साथ दूँगा।'

रसिक०—'तो चलें, राज-काज कुमार जंगबहादुरसिंह को सौंप कर अभी चलने की तैयारी करें। राजकुमार को इस विषय की कोई बात न बतावें, केवल पर्यटन का बहाना कर दें।'

खंग०—'आप यहीं ठहरें, मैं अभी आया....क्या साथ में दो तमंचे ले चलना ठीक होगा ?'

रसिक०—'अवश्य।....न जाने कब आवश्यकता पड़ जाय।'

खंगबहादुर चले गये और लगभग १ घण्टे बाद आवश्यक कपड़े तथा सामान लिये आये।

बोले—'सब प्रबन्ध कर दिया है। राज्य-काज कुमार को सौंप दिया है। अब हम लोग चल सकते हैं।'

रात्रि का अन्धकार चारों ओर फैल चुका था जब कि खंगबहादुर और रसिकरसाल एक नये देश की खोज के लोभ में वशीभूत होकर निकल पड़े। कुछ दूर जाने पर भयानक जंगल मिला।

शेरों की चिग्घाड़ और भेड़ियों के कोलाहल के मध्य से होकर सशंक दृष्टि से चारों ओर देखते हुए वे दोनों अग्रसर हो रहे थे। कई कोस दक्षिण की ओर निकल जाने पर रूपनगर के खंडहर मिलने लगे। वही रूपनगर जो कुछ दिन पहले अपनी सुन्दर भव्य अट्टालि-

काओं के लिये प्रसिद्ध था, इस समय एक निरीह खंडहर के रूप में पैरों के पास पड़ा हुआ, भूमि पर लोट रहा था।

बीच खंडहर में चमकती हुई एक पीतल की मूर्ति थी। ये दोनों आदमी निर्भीकतापूर्वक उस विकराल मूर्ति के पास चले गये। वह मूर्ति एक ऊँचे चबूतरे पर पालथी मारकर बैठी हुई किसी भयानक दानव की थी जिसने अपने दोनों हाथ घुटन पर रखा था।

इन दोनों को देखकर मूर्ति ने अपनी बड़ी-सी जिह्वा बाहर निकाल कर अपने होंठ चाटे, फिर गर्जन करके बोली 'आओ! मैं तुम्हें एक नवीन देश में ले चलूँगी जहाँ सोने के मकान हैं और मोतियों की वर्षा होती है।'

रसिकरसाल कुछ आगे बढ़े और बोले—'हम लोग आये हैं। ले चलो उस नये देश में।'

मूर्ति बोली—'आओ, चबूतरे पर चढ़कर मेरे पास आओ।'

दोनों चबूतरे पर चढ़कर उस भयंकर पीतल की मूर्ति के पास गये। ज्योंही वे दोनों वहाँ पहुँचे कि उस विकराल मूर्ति ने अपने वज्र सदृश्य हाथ बढ़ाकर उन दोनों की गर्दन पकड़ ली और बादल के गरजने की सी आवाज में बोली—'चलो, बहुत दिन बाद नर माँस भक्षण करने को मिला है।'

उसने अपना मुँह खोला। उसका मुख इतना विकराल तथा बड़ा था कि उसमें समूचा आदमी समा जाय। मूर्ति ने एक बार रसिकरसाल की ओर देखकर जोरों से अपना दाँत कटकटाया। उस अँधेरी रात्रि में वह दाँतों की कटकटाहट बड़ी ही भयंकर प्रतीत हो रही थी

रसिकरसाल प्राणों के मोह से चिल्ला उठा, लेकिन मूर्ति ने अपने मजबूत हाथों से उसे बैठाकर अपने मुँह में रख लिया।

घुट् की आवाज हुई और रसिकरसाल को वह भयानक मूर्ति समूचा ही अपने पेट में निगल ले गई।

खड्गबहादुर रसिकरसाल की यह दशा देखकर छटपटाने लगे। उन्हें बहुत दुःख हो रहा था कि क्यों उन्होंने रसिकरसाल का कहना माना। लेकिन उनका छटपटाना, रोना, चिल्लाना सब व्यर्थ था।

पीतल की उस विकराल दानवाकृति ने खंगबहादुर को भी अपने मुँह में रख लिया।

× × ×

विजय एक ऐसा आदमी था जिसने साहस के साथ दर्दनीय विपत्तियों का सामना किया था। वह परिस्थिति का दास होना नहीं जानता था—उसने परिस्थितियों को स्वयं अपना दास बनाना सीखा था। वह माता का अनन्य भक्त था, परन्तु जब उसने देखा कि उसके जीवन-व्रत की पूर्ति होना असम्भव है, तो अपने ध्येय की प्राप्ति के लिये बन्धु-बान्धव, राजपाट तथा प्रिय जननी को भी त्याग कर जंगल की राह ली।

इस समय रात्रि का अन्धकार चारों ओर व्याप्त था जिसका सहयोग पाकर जंगल और भी भयप्रद दृष्टिगोचर हो रहा था। इस समय विजयसिंह के हाथों पर वही 'गुरुघण्टाल' की पोशाक थी, जिसकी करामात पाठक भलीभाँति 'खून का प्यासा' उपन्यास में पढ़ चुके हैं।

उस पोशाक को विजय अपने ऊपर पहने हुए न था। उसे तब तक पहनने का उसका इरादा भी नहीं था, जब तक किं कोई आकस्मिक दुर्घटना न उपस्थित हो जाय। इस समय वह नाना प्रकार के विचारों में तल्लीन धीरे-धीरे घनघोर जंगल के मध्य से चला जा रहा था।

वह सोच रहा था—'उफ! मेरे जीवन का अमूल्यव्रत पूरा ही न हुआ। मेरा अपमान करने वाला शत्रु खंगबहादुर इस समय मेरे भाइ का श्वसुर है। उससे किस प्रकार बदला ले सकता हूँ.... और मेरे पिता का आघात रसिकरसाल भी मेरे पञ्जे में आकर निकल

भागा। अपनी सोधित प्रेत-आत्मा को भी अपने प्रण के अनुसार अभी तक मैंने नर-रक्त का पान न कराया। उफ! कैसे होगा यह सब !.... इस समय मैं घर-द्वार त्याग कर बीहड़ बन में आ गया हूँ, परन्तु मैंने अभी तक यह न सोचा कि कहाँ जाऊँगा, क्या करूँगा ! क्या अपने उसी पुराने तिलस्मी बँगले में चला चलूँ....नहीं दुर्जय आदि वह स्थान जानते हैं, अतः वहाँ जाना ठीक नहीं होगा। हाँ रूपनगर की उस भयानक पीतल की मूर्ति ने मुझे बुलाया था और कहा था कि दो मास में मेरे पास आना तो मैं तुम्हें एक दूसरे ही देश को ले चलूँगी। आज दो महीना पूरा हो चला है चलूँ, उसी मूर्ति के पास....देखूँ वह मुझे किस नये देश में ले जाती है।'

अब विजय तेज चलने लगा।

अर्द्धरात्रि की भयानक नीरवता में विजयसिंह निर्भयतापूर्वक उस ओर बढ़ चला, जिधर रूपनगर के ध्वंसावशेष के मध्य में वह भयानक तिलस्मी मूर्ति अब भी अचल भाव से बैठी थी।

उस स्थान पर आकर विजय कुछ सोचने लगा। अभी वह उस मूर्ति से लगभग २५ हाथ दूर था।

उसी समय उसके कानों में उसी ओर से आते हुए दो आदमियों की जोर-जोर से बातचीत करने की आवाज आई। वह ठिठक कर खड़ा हो गया और कौतूहल के वशीभूत होकर एक घने वृक्ष की ओट में छिप गया।

ये दोनों आने वाले आदमी पीतल की मूर्ति के पास आकर रुक गये।

उस समय उदय होते हुए चन्द्र भगवान की आभा से विजय वहाँ का सारा दृश्य देख रहा था।

उन दोनों मनुष्यों को देखकर वह मूर्ति भयानक स्वर में बोली—'हे! आओ—मैं तुम्हें एक नये देश में ले चलूँगी जहाँ सोने के मकान हैं और मोतियों की वर्षा होती है।'

विजय को महान् आश्चर्य हुआ कि यही बात तो उस भयानक मूर्ति ने स्वयं विजयसिंह से भी कही थी। तो क्या यह नरपिशाच की मूर्ति सभी से यही बात कहा करती है ?

उन दोनों आदमियों में से एक ने कहा—'लो हम लोग आये हैं। ले चलो मुझे उस देश में .'

उस आदमी की आवाज सुनकर विजय को महान् आश्चर्य हुआ। वह मन ही मन बोला—'हैं ! यह तो रसिकरसाल की आवाज है.... और यह दूसरा कौन है ? अरे, यह तो खंगबहादुर हैं ?....अवश्य ही इस मूर्ति की बातों से इन दोनों को लालच पैदा हुई है अब दोनों उस नये देश में जाकर 'रक्त-मन्दिर' के धन पर अधिकार करना चाहते हैं ? परन्तु इन दोनों में मेल कैसे हुआ ? खैर, देखें क्या होता है ?'

मूर्ति ने उन दोनों आदमियों से कहा—'आओ, मेरे पास आओ !'

और वे दोनों आदमी जो वास्तव में खंगबहादुर और रसिकरसाल थे उस भीषण मूर्ति के पास चले गये।

उसी समय भयानक चीख से जंगल गूँज उठा और आश्चर्य विस्फारित नेत्रों से विजय ने देखा कि उस भयानक मूर्ति ने खंगबहादुर और रसिकरसाल को अपने वज्र सदृश हाथों द्वारा पकड़ लिया है और वे दोनों छूटने के लिए सतत् प्रयत्न कर रहे हैं। विजय के देखते-देखते वह भीषण विकराल मूर्ति उन दोनों पुरुषों को निगल गयी।

साहसी विजय ने भय से अपनी आँखें मूँद लीं, मगर दूसरे ही क्षण जब उसके नेत्र खुले तो उसने देखा कि वह मूर्ति शान्त भाव से बैठी है, जैसे कुछ हुआ ही न हो।

अब विजय सोचने लगा 'क्या यह पीतल की मूर्ति विश्वास-घातिनी है ? क्या इसी प्रकार रास्ता चलते हुए पुरुषों को लालच देकर अपने पास बुलाना तथा उन्हें पकड़कर उदरस्थ कर जाना ही

इस पैशाचिक मूर्ति का कार्य है ? तो फिर क्या उसके साथ भी वह मूर्ति वही बर्ताव न करेगी ?—अवश्य करेगी, उसका विश्वास क्या.... तब वह किसी प्रकार भी उस नये देश में न जा सकेगा ?' वास्तव में विजयसिंह उस नये देश में जाकर 'रक्त-मन्दिर' का भेद खोलने को अत्यंत लालायित था, परन्तु वह किस प्रकार जा सकता था ?

कहीं वह भीषण मूर्ति उसके साथ भी विश्वासघात न कर बैठे ? अन्त में विजय ने एक रास्ता सोच लिया। उसके पास इस समय 'गुरुघण्टाल' वाली पोशाक थ'।

वह जानता था कि कोई भी शक्ति यह पोशाक पहने रहने पर उसे हानि नहीं पहुँचा सकती, क्योंकि यह पोशाक करामाती थी और तिलस्मी सामानों में सबसे बहुमूल्य थी।

अतः विजयसिंह ने वही पोशाक अपने ऊपर पहन ली और मूर्ति की ओर बढ़ा।

दूर से ही उसे देखकर मूर्ति चिल्ला उठी—'आओ ! आओ !! मैं तुम्हें एक नये देश में ले चलूँगी, जहाँ सोने के मकान हैं और मोतियों की वर्षा होती है।'

विजय बोला—'लो मैं आ गया ! ले चलो मुझे उस देश में, मगर याद रखना कि अगर मुझसे जरा-भी विश्वासघात किया तो मुसीबत उठाओगी।'

मूर्ति०—'नहीं-नहीं महाशय ! आप आइये—मेरे पास तो आइये !'

विजय उसके पास चला गया।

अरे बाप रे ! गजब फुर्ती से उस मूर्ति ने विजयसिंह को दबोच लिया और चाहा कि अन्य लोगों की तरह उसे भी निगल जाय कि उसी समय विजय की करामाती पोशाक से एक भीषण ज्वाला उत्पन्न हो गई।

उस भयानक मूर्ति ने एक भीषण चिग्घार मारकर उसे छोड़ दिया और तब वह विनती भरे स्वर में बोली—'अरे तुम तो विजय-

सिंह हो। बताया क्यों नहीं ? मुझे क्षमा करो भाई, मैंने तुम्हें पहचाना नहीं था....आओ ! वास्तव में मैं तुम्हारे ही लिये यहां बैठाया गया हूँ। मैं तुम्हें जरूर चंगदेश में ले चलूँगा....आओ मेरी पालथी पर बैठ जाओ।'

विजय कुछ सोचने लगा। वह तिलस्मी मूर्ति बोली—'तुम सोच क्या कर रहे हो ? अब मैं तुम्हारे साथ विश्वासघात करने का साहस नहीं कर सकता। तुम्हारे पास एक ऐसी वस्तु है, जो पूर्णतया तुम्हारी रक्षा करेगी। आओ तनिक भी भयभीत न हो।'

विजय निर्भयतापूर्वक जाकर उस मूर्ति की गोदी में बैठ गया। मूर्ति बोली—'मुझे दोनों हाथों से कस कर पकड़ लो !'

विजय ने वैसे ही किया। थोड़ी ही देर बाद विजय ने देखा कि वह चबूतरा जिस पर मूर्ति और वह उपस्थित थे धीरे-धीरे अपनी जगह पर घूमने लगा।

थोड़ी ही देर में वह बहुत तेज घूमने लगा और विजय ने यदि उसे पकड़ा न होता, तो अवश्य ही वह दूर छटक जाता और हड्डी पसली एक भी न बचती।

एक धड़ाके की आवाज के साथ वह समूचा चबूतरा जमीन के अन्दर घुस गया।

उस तेजी के कारण विजयसिंह बदहोश-सा हो गया।

कई मिनट तक उसे होश भी न रहा।

जब उसके होश-हवाश दुरुस्त हुए तो उसने देखा कि वह अब भी उसी भयानक मूर्ति की गोद में बैठा है और वह मूर्ति अब भी उसी चबूतरे पर बैठी है मगर वह चबूतरा इस समय तेजी के साथ रेलगाड़ी की तरह आगे की ओर दौड़ा जा रहा था, जैसे नीचे उसमें पहिये लगे हों। विजय ने चारों ओर दृष्टि फेरी मगर अन्धकार के मारे कुछ सूझ न पड़ा।

हाँ अनुमान से उसने यह अवश्य जान लिया कि वह चबूतरा

इस समय किसी लम्बी सकरी सुरंग में से होकर आगे की ओर तेजी से चला जा रहा था—शायद उसी अनजाने देश के ओर की यह यात्रा थी।

विजय अब भी उस पीतल की मूर्ति को कसकर पकड़े था और वह मूर्ति एकदम शान्त बैठी थी, मानों एकदम निर्जीव हो तथा कभी भी बोल न सकती हो।

वह चबूतरा—चबूतरा क्या था, गाड़ी थी क्योंकि नीचे से पहियों की घड़-घड़ आवाज आ रही थी, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार रेलगाड़ी के पहिए घड़-घड़ करते हैं।

न जाने कब तक वह चबूतरानुमा गाड़ी हवा की तेजी के साथ आगे की ओर दौड़ती रही और वह मूर्ति और विजय चुपचाप बैठे रहे। लगभग दस घंटे बाद एकाएक उसकी तेजी घटने लगी, साथ ही उस अन्धकारमयी सुरंग में सामने की ओर कुछ चाँदनी-सा दिखाई पड़ने लगा। थोड़ी देर में एक हरे-भरे बाग में आकर वह चबूतरा रुक गया।

विजय बैठा ही रहा।

उसने सोचा अब मूर्ति जरूर कुछ बोलेगी, परन्तु कई मिनट बीत जाने पर भी वह मूर्ति चुपचाप बैठी रही। केवल एक बार उसके दाहिने हाथ में कम्पन हुआ और विजय ने देखा कि मूर्ति के दाहिने हाथ की हथेली खुल गई है। और उस पर कुछ लिखा दृष्टिगोचर हो रहा था।

विजय ने पढ़ा—यों लिखा था—

'यह पहला पड़ाव है। यहाँ एक दिन रुककर विश्राम कर लो!'

अब विजय चबूतरे से उतर पड़ा। पहली नजर उसकी उस विचित्र चबूतरे पर पड़ी, जो उसे उस अनजानी जगह में घसीट लाया था।

वह चबूतरा एक छोटी-सी गाड़ी के रूप में था।

उसमें रेलगाड़ी के-से छोटे-छोटे पहिये लगे थे और जमीन पर दूर

तक पतली लाइन बिछी हुई दिखाई पड़ रही थी, मालूम होता था कि उसी पर से वह गाड़ी दौड़ती आई थी।

विजय ने अन्दाजा लगाया कि इस दस घण्टे की यात्रा में वह लगभग ६०० मील आ चुका है, क्योंकि उस गाड़ी की रफ्तार ६० मील प्रति घण्टे से कम न थी।

मूर्ति की फिक्र छोड़कर विजय बाग में इधर से उधर टहलने लगा। उस बाग में जगह-जगह पर सुन्दर पुष्प खिल रहे थे। बीच में एक सुसज्जित बंगला दृष्टिगोचर हो रहा था। उसके पास ही एक खुशनुमा छोटा-सा तालाब था, जिसमें रङ्ग बिरङ्गी मछलियाँ तैर रही थीं। विजय हैरान था उस उद्यान की सुन्दर सजावट को देखकर।

उसे स्वप्न में भी विश्वास न था कि मानवीय नेत्रों से दूर भूगर्भ में इतना बड़ा उद्यान होगा।

विजय ने बाग में से नाना प्रकार के फल तोड़कर खाये और निर्भयतापूर्वक उस बँगले में जाकर विश्राम करने लगा।

उस बँगले में विश्राम की सभी आवश्यक चीजें उपस्थित थीं।

आधी रात में एक भयानक घण्टे की आवाज सुनकर विजय की नींद खुल गई।

उसने सुना कि कोई बड़ा-सा घण्टा अपनी कर्कस आवाज में टन्न-टन्न बोल रहा है।

विजय घबड़ा गया।

वह जानता था कि यह तिलस्मी स्थान है, जहाँ पग-पगपर खतरा है।

विजय उठकर उसी ओर दौड़ा, जिधर से घण्टे की आवाज आ रही थी।

● ●

जिस समय उस भयानक मूर्ति ने रसिकरसाल को समूचा ही अपने पेट में भर लिया था, उस समय मारे भय तथा आतंक से रसिकरसाल चेतनाहीन-सा हो गया। उसे बहुत देर तक तन-बदन की सुध ही नहीं रह गई।

थोड़ी देर बाद बदन में हवा के ठण्डे झोंके लगने के कारण उसके शरीर में मृदु कम्पन हुआ और उसकी अचैतन्यता शीघ्र ही दूर हो गई। वह आँख मलकर उठ बैठा। उसके सर में इस समय बेहद चक्कर आ रहा था। उसका दिमाग उड़ता हुआ-सा प्रतीत होता था। उसके नेत्र पूर्णतया देखने में असमर्थ थे।

धीरे धीरे उसे पूर्ण बातें याद आने लगीं। उस भयानक मूर्ति की बातें सोचते ही वह एक बार भय के मारे पुनः काँप उठा। परन्तु उसे आश्चर्य तो इस बात पर हो रहा था कि वह यहाँ आया कैसे ?

उसे तो बचने की जरा भी आशा न थी, परन्तु वह बच कैसे गया ? उसे तो इस सम । मूर्ति के पेट में होना चाहिये था।

अरे ! एकाएक वह चौंक पड़ा, जबकि उसने अपने से थोड़ी ही दूर पर खंगबहादुर को भी बेहोश पड़े देखा। उसके जी में जी आया।

भला दोनों आदमी साथ तो हैं—अब सोच समझकर कोई युक्ति निकाल ही लेंगे। धीरे-धीरे खंगबहादुर भी चैतन्य होकर उठ बैठे और रसिकरसाल से वार्तालाप करने लगे।

वह एक छोटी-सी रौशनदार और हवादार कोठरी थी जिसमें इस समय उन दोनों ने अपने को बेहोश पड़ा पाया था। उसमें सिवा सामने की ओर खुले हुए एक दरवाजे के और कोई भी रास्ता नहीं दृष्टिगोचर होता था।

रसिकरसाल बोला—"आइये ! इस दरवाजे से चल कर देखा

जाय कि उधर क्या है ! जहाँ तक मेरा अनुमान है कि अब भी हमलोग उस देश में चल सकते हैं। एक बार प्रयत्न करके देखा जाय तो सही।'

खंग० –'हाँ-हाँ ! यह ठीक होगा।'

दोनों आदमी उस खुले दरवाजे से उस पार गये। उसके उस पार जाते ही दरवाजा अपने आप एक हलकी आवाज देता हुआ बन्द हो गया।

रसिकरसाल ने कहा—'लीजिये ! अब उधर जाने का भी रास्ता बन्द हो गया। खैर, आइये आगे चलें।'

एक बहुत लम्बी सुरंग थी, जिससे चलकर रसिकरसाल और खंगबहादुर शीघ्र ही एक हरे-भरे उद्यान में पहुँच गये। उस उद्यान की शोभा देखकर दोनों आदमी अत्यन्त प्रसन्न हुये और फल-फूलों से अपनी तृषा-क्षुधा शान्त की, तत्पश्चात् घूम-घूम कर उस उद्यान की सैर करने लगे।

उद्यान के दक्षिण कोने पर, पत्थर के एक शेर की मूर्ति एक ऊँचे चबूतरे पर बनी हुई थी। उस चतुर कारीगर की प्रशंसा किये बिना हृदय नहीं मानता था, जिसने उस शेर की मूर्ति को बनाया था।

दोनों आदमी कौतूहलवश उसी ओर को बढ़े, मगर जैसे ही रसिकरसाल ने उस शेर की मूर्ति की ओर कदम बढ़ाया, वैसे ही वह भयंकर रूप से गरज उठा और अपनी भयानक जीभ मुँह के बाहर निकालकर होंठ चाटा, मानों उसने अपने सामने कोई बहुत ही स्वादिष्ट शिकार देखा हो।

रसिकरसाल डर कर कई कदम पीछे हट गया, पुनः ध्यानपूर्वक उस चबूतरे की ओर देखने लगा जिस पर वह शेर की मूर्ति बैठाई हुई थी। उस चबूतरे के सामने की ओर यह लिखावट साफ अक्षरों में लिखी थी—

'अगर तुम उस भयानक देश में जाना चाहते हो, तो इस शेर

की मूर्ति को पीछे की ओर से धक्का दो, तब इसके मुंह से एक नायाब वस्तु मिलेगी, जो तुम्हें उस नये देश में पहुँचने में सहायता करेगी।'

उस लिखावट को पढ़कर रसिकलाल ने शेर के पीछे जाकर उसे जोरों से धक्का दिया। धक्का देते ही उस शेर के मुँह से एक भयानक गुर्राहट निकली और अगर रसिकलाल पहले ही डरकर दूर न हट गया होता तो वह अवश्य ही अपने भयानक मुख से उसे पकड़ लेता।

थोड़ी देर तक गुर्राने के बाद उस शेर ने अपनी गर्दन नीची की, और उसी समय उसके मुँह से चमकती हुई कोई वस्तु निकल भूमि पर गिर पड़ी। दोनों ने देखा, वह चाँदी का बना हुआ एक बड़ा-सा डिब्बा था।

रसिकरसाल ने आगे बढ़कर उस डिब्बे को उठा लिया और उत्सुकतापूर्वक उसे तुरन्त ही खोल डाला। उस डिब्बे में एक छोटी-सी सुनहले अक्षरों में लिखी हुई पुस्तक मिली। दोनों आदमी ध्यानपूर्वक उस मूल्यवान पुस्तक का अवलोकन करने लगे।

पहले पृष्ठ पर यह लिखा था—'जहाँ सोने के मकान हैं और मोतियों की वर्षा होती है, उस चंगदेश में जाने का सरल उपाय—'

दूसरा पृष्ठ खोलने पर कुछ नोट लिखा था—

नोट—खबरदार! यदि तुममें साहस न हो तो कदापि चंगदेश में जाने का नाम न लो, क्योंकि भयानक चंगदेश में नाना प्रकार की भयंकर घटनायें झेलनी पड़ेंगी। जरा भी कहीं गड़बड़ी होने पर जान से हाथ धोना पड़ जायगा। वहाँ पहुंचने का रास्ता बहुत भयंकर है। पग-पग पर विपत्तियों का सामना करना पड़ेगा। उस देश में पहुँचने का सबसे सरल मार्ग, वह पीतल की मूर्ति है, जो तुम्हें अपनी गोद में लेकर उस देश तक पहुँचा देगी और तुम बहुत आराम के साथ वहाँ पहुँच जाओगे—मगर जिसे वह मूर्ति निगल जायगी, उसके लिए वह रास्ता बन्द हो जायगा। इसके लिए

केवल एक मार्ग रह जाता है, जो सबसे भयंकर है। वह रास्ता यह है। अब आगे बढ़ने का इरादा है या नहीं ?

खंग० — 'क्यों नहीं....ऐसे नये देश में अवश्य चला जायगा।'

रसिक०—'परन्तु विपत्तियों की ओर आपने ध्यान नहीं दिया.... इस पुस्तक में लिखा है कि आगे चलने पर हमें एक नदी द्वारा १५ दिन तक यात्रा करनी होगी, तब हम उस विकराल जंगल के किनारे पहुँचेंगे। जिसमें शेर, चीते, भालू, हाथी, गैंडे आदि भयंकर जन्तु रहते हैं और नाना प्रकार के साँप, बिच्छू, गोजर तथा अन्य हिंसक कीड़े-मकोड़े जीव-जन्तु बहुतायत से हैं, जिनसे मनुष्य की जान बचना अत्यन्त दुर्लभ है। अगर हम परमात्मा की कृपा से वह ५० कोस का जंगल पार कर सकें तो चंगदेश की सीमा पर पहुँच जायेंगे। मान लीजिये कि हम किसी प्रकार उस देश तक जा पहुँचे-तो महान् विपत्ति यह है कि वहाँ के निवासी जीवित न छोड़ेंगे और अवश्य हमें 'रक्त-मन्दिर' में ले जाकर बलि दे दिया जायगा—अब बोलिये क्या विचार है ?'

खंग० —'आप क्षत्री होकर डर रहे हैं।'

रसिक०—'जी नहीं श्रीमान्! मैं डरता नहीं। अगर आपकी ऐसी ही धारणा है तो मैं चलने को तैयार हूँ, चाहे प्राण भले ही चले जायँ। आइये—अब उस दरवाजे को खोजा जाय, जो हमें उस नदी के किनारे तक पहुँचावेगा।'

दोनों आदमी अत्यन्त मनोयोगपूर्वक बाग की छान-बीन करने लगे, परन्तु दरवाजे की सूरत जल्द न दिखाई पड़ी।

इसी छान-बीन में उन दोनों को कुल्हाड़ी तथा कई एक अन्य आवश्यक औजार मिल गये, जिसे उन्होंने आवश्यक समझकर साथ रख लिया।

बहुत परिश्रम के बाद बाग के एक कोने में मिट्टी के नीचे दबा हुआ एक सुरंग का दरवाजा मिला। दोनों आदमियों ने फर्से की

मदद से जो उन्हें उसी बाग में मिला था, थोड़ी ही देर में वह दरवाजा साफ कर डाला।

खुशी-खुशी अपने आवश्यक सामान लेकर वे लोग उस दरवाजे की राह नीचे उतरे। जिसमें नीचे उतरने के लिए पतली सीढ़ियाँ बनी हुई थीं।

एकदम नीचे उतर जाने पर एक सुरङ्ग मिली, जो अपने उदर में घना अन्धकार धारण किये हुए बहुत दूर तक चली गई थी।

अन्धकार में चलते-चलते दोनों का जी ऊबने लगा, परन्तु उन्होंने साहस न खोया।

लगभग ५ घण्टे तक वे लोग उस अँन्धेरी सुरङ्ग में चलते रहे। यही गनीमत थी कि वह सुरङ्ग एकदम सीधी तथा चिकनी बनी हुई थी—जरा भी कहीं ऊँची-नीची न थी, इसलिए सिवा अन्धकार की घोर कालिमा के और किसी वस्तु ने उन्हें कष्ट न पहुँचाया।

एक पहाड़ की तराई में आकर उस सुरंग का खात्मा हुआ और दोनों ने अपने सामने एक ऊबड़-खाबड़ उपत्यका देखी। जिसके मध्य से एक तेज बहनेवाली पतली नदी बल खाती हुई बह रही थी।

दूर-दूर तक, जहाँ नजर जाती थी, हरियाली ही दिखाई पड़ रही थी।

वह एक विस्तृत मैदान था। पीछे की ओर पहाड़ था, जिसमें एक गुफा दिखाई पड़ रही थी—उसी गुफा में से अभी-अभी ये दोनों निकले थे।

दोनों ने नदी के किनारे आकर पेट भर पानी पीया।

यही वह नदी थी, जिसके विषय में उस तिलस्मी पुस्तक में लिखा था और जिसकी राह उन दोनों को १५ दिन की यात्रा करनी थी।

वह जगह बड़ी सुनसान थी। मनुष्यों की कौन कहे पशु-पक्षियों की भी सूरत मुश्किल से नजर आती थी।

अब प्रश्न यह हुआ कि बिना किसी नाव के किस प्रकार नदी का रास्ता तय किया जायगा।

रसिकरसाल ने कहा—'अब हमें एक नाव की आवश्यकता है, परन्तु ऐसे बीहड स्थान में नाव का मिलना दुर्लभ ही नहीं, असम्भव है। अच्छा हो कि हमलोग इस नदी के किनारे-किनारे आगे बढ़े, इस प्रकार हमें नाव की जरूरत ही न पड़ेगी।'

खँग—'आपका कहना ठीक है, मगर एक बात पर शायद आपने ध्यान नहीं दिया—उस पुस्तक में यह साफ लिखा है कि किसी नाव पर यात्रा करो। शायद इसमें भो कोई गूढ़ रहस्य हो। शायद जमीन पर चलने से कोई बहुत गहरी विपत्ति आ सकती हो—नहीं तो पुस्तक में यह न लिखा होता कि सिर्फ नाव से यात्रा करो या केवल पानी के मार्ग से आगे बढ़ो।'

रसिक०—'तो आपकी राय यह है कि स्थल-मार्ग से आगे बढ़ने पर हमें किसी विपत्ति का सामना करना पड़ेगा?'

खंग०—'जी हाँ! मेरा ऐसा ही विश्वास है....हमारे पास कुल्हाड़े हैं। उनकी सहायता से हम सरलतापूर्वक कोई मोटा वृक्ष काटकर उसके तने की एक अच्छी नाव बना सकते हैं। इस कार्य में अधिक से अधिक एक सप्ताह लगेगा।

रसिक०—'ओह! आपने बहुत दूर की सोची। जरूर यही करना चाहिये।'

बस फिर क्या था, दोनों आदमी जी-जान से काम पर जुट गये।

६ घण्टे के अनवरत परिश्रम से एक मोटा वृक्ष काट डाला। इसके बाद सन्ध्या का आगमन देखकर दोनों ने रात काटने के लिए वृक्ष की टहनियों से एक छोटी सी झोपड़ी बनाया

जंगल के फल-फूल खाकर वे दोनों रात्रिकाल में उसी झोपड़े में सोये।

प्रातःकाल होते ही पुनः अपने कार्य में संलग्न हो गये।

इस प्रकार लगभग १० दिनों में उन दोनों ने एक छोटी-सी मजबूत नाव बना ली। उन्होंने लगातार इतना परिश्रम किया था कि बिना दो दिन सुस्ताये वे आगे न बढ़ सके।

बारहवें दिन वह नाव नदी की धार में छोड़ दी गई। रसिक-रसाल शरीर से मजबूत था अतः डाँड़ उसी ने पकड़ी। दक्षिण दिशा की ओर धीरे-धीरे नाव बढ़ चली।

पहले दिन १० बजे से लेकर सन्ध्या तक नाव बराबर चलती गई। कोई नई बात न दिखाई पड़ी। नदी के दोनों किनारों पर अच्छे-अच्छे फलों के वृक्ष लगे थे।

शाम को नाव किनारे लगा दी गई और रसिकरसाल कुछ फल तोड़ लाया, जिससे दोनों ने अपनी क्षुधा शान्त की।

चाँदनी रात थी, अतः रात में भी नाव चलाना निश्चित हुआ। इस प्रकार पाँच दिनों तक उस नदी में बराबर नाव चलती गई। इस बीच में कोई नई घटना न घटी।

एक परिवर्तन अवश्य दृष्टिगोचर हुआ था, वह यह कि अब नदी के दोनों किनारों पर घना जङ्गल मिलने लगा था, जो देखने में बहुत भयंकर लगता था।

अपनी इस जल यात्रा के छठवें दिन रात्रि के आठ बजे रसिक-रसाल ने अपनी नाव किनारे लगाई।

उस समय चन्द्रमा की रोशनी से सारा जंगल सफेद हो गया था। फिर भी सुनसान जंगल भाँय-भाँय कर रहा था। ऐसा लगता था मानों वहाँ पर भयंकर पिशाचों का निवास हो। कभी-कभी पास के जङ्गल से किसी जन्तु के बोलने की विचित्र आवाज आ जाती थी। यहाँ आते ही न जाने क्यों दोनों सहम से गये, फिर भी फल की खोज में उन्हें नदी तट पर उतरना ही पड़ा।

रसिकरसाल नाव के पास ही खड़ा रहा और खंगबहादुर कुछ दूर आगे बढ़कर एक वृक्ष से कुछ फल तोड़ने लगे। एकाएक किसी

प्रकार की अद्भुत सरसराहट और रोने बोलने की आवाज हुई—जिसे खंगबहादुर ने तो नहीं, मगर रसिकरसाल ने बखूबी सुन लिया। उसे किसी खतरे का अनुमान हुआ। वह भयभीत दृष्टि से अपने चारों ओर देखने लगा। उसे एक भयानक दृश्य दिखाई पड़ा। ठीक उस जगह, जहाँ इस समय खंगबहादुर खड़ा हुआ फल तोड़ रहा था, एक बड़ी-सी पत्थर की चट्टान थी। उसकी आड़ से एक बहुत ही भयानक बड़ा-सा काला सिर बाहर निकला हुआ था और दो प्रज्वलित आँखें उन दोनों को ओर देख रही थीं।

वह न जाने क्या था—न जाने कौन था? भूत था, प्रेत था, पिशाच था या क्या था? रसिकरसाल कुछ भी अनुमान न कर सका।

फिर भी वह समझ गया कि अवश्य ही उस चट्टान के पीछे कोई भयंकर जीव उपस्थित है और शीघ्र ही उन दोनों पर कोई गहरी आपत्ति आना चाहता है।

सबसे अधिक भय तो खंगबहादुर के लिये था क्योंकि वे ही उस चट्टान के एकदम निकट थे और उन्हें अभी तक किसी भी विपत्ति की आशंका न थी।

उस भयानक सर ने चट्टान के पीछे उचककर एक बार फिर उन दोनों की ओर देखा, फिर रसिकरसाल ने देखा कि वह भयानक जन्तु उस चट्टान के पीछे से निकलकर खंगबहादुर की ओर बढ़ा।

वह जन्तु मनुष्य के आकार का था परन्तु मनुष्य का दूना ऊँचा तथा मोटा था। उसका शरीर एकदम काला था और उस पर बहुत लम्बे-लम्बे बाल थे। उसका सर बहुत भारी था। वह पूरा राक्षस लग रहा था।

वह दानव धीरे-धीरे खंगबहादुर की ओर बढ़ रहा था। खंगबहादुर निश्चिंत थे। उन्हें पता न था कि मौत उनके सर पर आना ही चाहती है।

रसिकरसाल काँप उठा। वह अपनी नाव की ओर दौड़ा और नाव

में जाकर कुछ खोजने लगा। वह अपना तमञ्चा खोज रहा था। तमञ्चा लेकर वह नाव पर खड़ा हो गया।

उसने देखा कि अब यदि साहस से काम नहीं लेता तो जरूर वह दानव खंगबहादुर की जान ले लेगा और तब उस जङ्गल में वह अकेला रह जायगा।

खंगबहादुर कुछ फल तोड़कर अभी घूमे ही थे कि उन्होंने उस विकराल दानव को देखा। उसके मुख से बेतहाशा चीख निकल पड़ी। उस दानव ने आगे बढ़कर खंगबहादुर को खिलौना-सा पीठ पर लाद लिया और सामने जंगल की ओर दौड़ चला।

रसिकरसाल की आँखों के सामने अँधेरा छा गया।

धायँ! धायँ!....तमंचे की गरजती हुई आवाज से जंगल गूँज उठा।

रसिकरसाल की गोली सीधे जाकर उस दानव के पैर में लगी थी।

गोली लगते ही वह दानव प्रबल वेग से लड़खड़ाया और उसके मुख से जोरों की चिग्घाड़ निकली, परन्तु वह रुका नहीं।

वह खंगबहादुर को पीठ पर लादे लड़खड़ाता हुआ जंगल की ओर दौड़ता ही गया। अब रसिकरसाल ने परिस्थिति की विकटता का अनुमान किया।

वह समझ गया कि अब बिना जान पर खेले वह खंगबहादुर को नहीं बचा सकता। वह सोचने लगा—इन्हीं सब खतरों के कारण उस पुस्तक में नाव से यात्रा करने को लिखा था।

रसिकरसाल ने दूसरा तमंचा लेकर अपनी कमर में खोंसा, अपना तमंचा मजबूती से हाथ में पकड़े नाव से नीचे उतरा और दौड़ता हुआ उस ओर बढ़ा, जिधर वह दानव गया था।

खंगबहादुर के चीखने-चिल्लाने की आवाज अब तक आ रही थी। कुछ दूर जाकर रसिकरसाल ने देखा कि एक स्थान पर मैदान में उसी प्रकार के बीस दानव एकत्रित हैं और वह घायल दानव खंग-बहादुर को लिए हुए उन्हीं के मध्य में जा गिरा है।

खंगबहादुर को दो नये दानवों ने पकड़ लिया और बाकी दानवों ने उस घायल दानव की सेवा करनी शुरू कर दी।

रसिकरसाल दूर से सब देख रहा था।

इस समय अगर वह समझ-बूझकर कार्य नहीं करता तो स्वयं उसकी भी जान जाने का भय था। अभी तक दानवों ने उसे नहीं देखा था।

रसिकरसाल धीरे-धीरे पेड़ों की आड़ लेता हुआ उस ओर बढ़ा जिधर वे दोनों दानव खंगबहादुर को पकड़े हुए खड़े थे।

एकाएक खंगबहादुर की दृष्टि रसिकरसाल पर गई। उन्हें कुछ ढाढ़स हुआ जब कि रसिकरसाल ने उन्हें तमंचा दिखाया।

आगे बढ़ते-बढ़ते जब रसिकरसाल बहुत पास पहुँच गया, तो उसने खंगबहादुर को इशारा करके अपनी कमर का तमंचा निकाला और उसे धीरे से खंगबहादुर की ओर फेंक दिया।

खड्गबहादुर ने उसे लोक लिया।

उसी समय पुनः धायँ-धायँ की आवाज हुई और रसिकरसाल की चलाई हुई गोली से वे दोनों दानव जो खंगबहादुर को पकड़े हुए थे, जमीन पर लोटते नजर आये।

अब खड्गबहादुर भी स्वतन्त्र थे और उनके हाथों में तमंचा था।

वे आगे बढ़कर रसिकरसाल से जा मिले।

दानवों में खलबली मच गयी और सब उस घायल दानव की व्यवस्था छोड़कर इन दोनों पर पत्थर के बड़े-बड़े टुकड़े लेकर टूट पड़े।

खंगबहादुर ने गोली चलाई और सामने के दो दानव गिरते नजर आये।

रसिकरसाल की गोली ने भी एक दानव को यमलोक पठाया।

उस भीषण अस्त्र की करामात देखते ही दानव ठिठक गये और तब पेड़ों की ओट में होकर इनपर पत्थर फेंकने लगे।

रसिकरसाल और खड्गबहादुर गोलियाँ चलाते हुए नदी की ओर

लौटने लगे। दानव दल भी उनका पीछा करने लगा, परन्तु अब उन सभी को पास आने का साहस न होता था।

धीरे-धीरे नदी के किनारे दोनों पहुँच गये तो क्या देखते हैं कि वहाँ भी चार दानव उपस्थित हैं। बड़ी कठिन समस्या आ गई।

अन्त में यह तय हुआ कि रसिकरसाल पीछा करते हुए दानवों को रोकें और खंगबहादुर नदी तट पर के दानवों को तितर-बितर करें।

वही हुआ। खंगबहादुर की दो गोली चलते ही नदी तट के दानव भाग खड़े हुए।

अब दोनों नदी के किनारे पहुँच गये, परन्तु एकाएक वे दोनों सन्न रह गये, यह देखकर कि उनका नाव वहाँ नहीं है।

यह नई आफत उनके सर आ गई, जब उन्होंने देखा कि कोई उनकी नाव खींचता हुआ नदी की बीच धारा में ले गया है। अब तो उनके होश उड़ गये। अब नाव मिलना मुश्किल था।

इनकी नाव इस समय नदी की बीच धारा में लहरों के थपेड़े खा रही थी।

इधर पीछा करने वाले दानव सर पर आ पहुँचे थे और पहाड़ी चट्टानों की ओट में छिपे हुए इन दोनों की ओर बड़े-बड़े पत्थर फेंक रहे थे। एक पत्थर तो रसिकरसाल के पैर में लगा था कि उससे चल सकना असम्भव था।

× × ×

आधी रात में लगातार बजते हुए उस कर्कश घण्टे की आवाज सुनकर विजय बेतहाशा उस ओर दौड़ा जिधर चबूतरे वाली गाड़ी पर वह भयानक पीतल की मूर्ति बैठी हुई थी।

वहाँ पहुँचते ही उसने देखा कि पीतल की उस भयानक मूर्ति ने अपना विकराल मुख खोला हुआ है और घण्टे की आवाज उसी के मुख से आ रही है।

विजय पहले तो ठिठका, फिर साहस करके मूर्ति की गोद में जा बैठा।

उसके गोद में बैठते ही घण्टे का बजना एकदम बन्द हो गया और तुरन्त वह चबूतरे वाली गाड़ी तेजी से सामने की ओर भाग चली, धड़-धड़ करती हुई।

विजय ने एक दो प्रश्न उस मूर्ति से पूछे, मगर वह मूर्ति एकदम निर्जीव की तरह पड़ी रही। उसने कुछ उत्तर न दिया। गाड़ी बराबर पूरी तेजी के साथ चली जा रही थी। रात्रि के कारण चारों ओर अँधेरा था, अतः सूझ नहीं पड़ता था कि उसके अगल-बगल क्या है।

इस तरह लगातार १५ घण्टों तक चलने के पश्चात् एक जगह गाड़ी फिर रुकी।

इस बार विजय ने अपने को पुनः एक हरे-भरे उद्यान में पाया।

यह पहले वाले उद्यान से भी बढ़कर था।

विजय ने मूर्ति के हाथ पर यह लिखा देखा—

'यह दूसरा पड़ाव है। यहाँ केवल दो घण्टे विश्राम कर सकते हो। इसके बाद रास्ता बड़ा ही कष्टप्रद और दुरूह है। होशियार होकर रहना। मूर्ति से एक क्षण के लिए भी अलग न होना।'

विजय ने गाड़ी से उतर कर झटपट नित्य-क्रिया से छुट्टी पाई, तत्पश्चात् स्नान करके कपड़े सुखाये।

अब तक वह बराबर 'गुरुघण्टाल' की पोशाक अपने बदन पर पहने था। इस पोशाक की पूरी करामात पाठक 'खून का प्यासा' उपन्यास में पढ़ चुके हैं। समय आने पर यहाँ भी पढ़ेंगे।

दो घण्टे के बाद विजय पुनः मूर्ति के पास आया और उसकी विकट यात्रा शुरू हो गई।

सन्ध्या हो गई थी और विचित्र भयंकर धड़-धड़ करती हुई वह गाड़ी अँधेरे में चली जा रही थी।

एक घण्टे के बाद विजय के शरीर में गर्मी मालूम देने लगी। उसे ऐसा लगा, मानों पास ही कहीं आग धधक रही हो।

ज्यों-ज्यों गाड़ी आगे बढ़ने लगी, त्यों-त्यों आस-पास की गर्मी बढ़ने लगी, मगर आग की कहीं सूरत भी न दिखाई दी।

विजय की तबीयत बेचैन होने लगी और एक घण्टे बाद ही उसने देखा कि पीतल की उस मूर्ति का बदन भी गर्मी की ज्वाला से गर्म हो उठा है और अब विजय को उस मूर्ति से लिपटे रहना असह्य हो उठा। वह मूर्ति को छोड़ भी नहीं सकता था, क्योंकि गाड़ी बहुत तेज जा रही थी और वह अगर मूर्ति को छोड़ देता तो न जाने कहाँ झटक दिया जाता। लाचार गर्मी सहन करता हुआ वह बैठा ही रहा।

'गुरुघण्टाल' की पोशाक इस समय भी उसके बदन पर थी और तब उसने समझा कि वहाँ की गर्मी इतनी तेज है कि अगर वह पोशाक न पहने रहता तो जलकर कोयला हो जाता।

उस स्थान की गर्मी चिता से भी तेज थी, तभी तो उस पोशाक को पहने रहने पर भी वह बेचैन हो उठा।

पाठकों को याद होगा कि यही 'गुरुघण्टाल' की पोशाक पहनकर विजयसिंह राजकुमारी कनकलता को चिता पर से उठा लाया था और उसका जरा भी बाल बाँका न हुआ था।

(देखिये 'खून का प्यासा' उपन्यास, पहला, दूसरा भाग)

अब विजयसिंह के लिए गर्मी का बरदाश्त करना असम्भव हो गया। उसे ऐसा लगा कि मानो असह्य ताप से वह अभी-अभी जलकर राख हो जायगा। वह बेहोश हो गया और जान ही न सका कि उसका बाकी रास्ता कैसे कटा। जब विजय की बेहोशी दूर हुई तो उसने अपने शरीर पर ठण्ढी हवा का अनुभव किया। उसने अपनी आँखें खोलीं तो देखा कि गाड़ी एक हरे-भरे उद्यान में खड़ी थी। यह तीसरा और अन्तिम पड़ाव था।

एकाएक विजय चौंक पड़ा, जबकि उसने पीतल की मूर्ति की ओर देखा। उसने देखा कि सोने-सी चमकती हुई वह पीतल की मूर्ति इस समय एकदम काली पड़ गई थी और ऐसा लगता था मानो कोयले

का कोई ढेर पड़ा हो। अब विजय ने समझा कि रास्ते की गर्मी इतनी ज्यादा थी कि यह पीतल की मूर्ति भी काली पड़ गई, परन्तु आश्चर्य की बात थी कि स्वयं वह कैसे बच सका—शायद उसी तिलस्मी पोशाक के कारण। लगभग दस घंटे तक विजय उस उद्यान में रहा! इसके बाद उसकी यात्रा पुनः प्रारम्भ हो गई!

इस बार की यात्रा पिछली यात्रा जैसी कष्टप्रद नहीं थी वरन् अतीव सुखप्रद थी। अब गाड़ी सुरंग में से नहीं चल रही थी, वरन् किसी हरे-भरे खुले हुए भूखण्ड के मध्य से होकर जा रही थी।

चारों ओर का दृश्य अत्यन्त मनोहारी था। ठंढी हवा के झोंके कह रहे थे कि यह स्थान छोड़कर कहीं न जाओ।

गाड़ी अपनी पूरी रफ्तार से जा रही थी और दस ही घन्टे की यात्रा के बाद वह पुनः एक सुरंग में घुसी।

यह सुरंग बहुत ही लम्बी-चौड़ी तथा हवादार थी। रोशनी भी वहाँ काफी थी एक घन्टे बाद वह रोशनी फीकी पड़कर लुप्त हो गई। विजय ने अनुमान लगाया कि अब सन्ध्या हो गई है।

अब तक जब से यह यात्रा शुरू हुई थी वह पीतल की मूर्ति एक दम चुप थी। परन्तु अब बोली—'देखो मित्र! अब हम चंगदेश में से होकर चल रहे हैं। थोड़ी देर में हम लोग 'रक्त-मन्दिर' नामक भयानक स्थान में पहुँच जायेंगे। वहाँ पहुँचकर मेरा कार्य समाप्त हो जायगा और तब तुम जानो और तुम्हारा काम जाने। परन्तु देखना, तुम विदेशी हो। यहाँ के निवासी विदेशियों के साथ प्राणघातक दुर्व्यवहार करते है।' इतना कहकर वह मूर्ति चुप हो गई।

लगभग घण्टे भर बाद सामने की ओर से रोशनी की झलक आई और विजय समझ गया कि अब वह 'रक्त मन्दिर' के पास पहुँच गया है। एक बड़े से कमरे में जाकर वह गाड़ी रुक गई और विजय के उतरते ही न जाने कहाँ जाकर लुप्त हो गई।

अब विजय उस जगमगाते हुए कमरे में अकेला रह गया।

इस समय खूब सन्नाटा था। कहीं से कोई आवाज नहीं आ रही थी। विजय आश्चर्यचकित नेत्रों से उस कमरे को देखता रह गया। जिधर ही उसकी दृष्टि जाती, उधर ही उसे नवीनता दृष्टिगोचर हो रही थी। वह एक बहुत बड़ा कमरा था, जिसकी दीवालें, छत, तथा जमीन सभी ठोस सोने की थी।

दरवाजों में मणिमाणिक्य जड़े हुए थे। जगह-जगह दीवारों में भी जवाहिरातों द्वारा चित्रकारी की गयी थी। दक्षिण ओर एक ऊँचे चबूतरे पर एक महाकाल के मुख की मूर्ति थी, वह भी सोने की थी। वह मूर्ति बड़ी भयंकर थी। उसका मुँह खुला था और रक्तवर्ण जीभ दिखाई पड़ रही थी। उसके गले का छेद ऐसा था कि उसमें एक आदमी खड़े-खड़े ही समा जा सकता था।

उस महाकाल के मुख की मूर्ति के अगल-बगल जवाहिरातों के दो भयानक शेर दोनों बगल बने हुए थे और शेरों के बीच में तथा उस मूर्ति के सामने दो मानवी मूर्तियों के सर बनाये गये थे। मालूम होता था, जैसे किसी ने उन दोनों सरों को अभी अभी वहाँ काटकर ला रखा हो। एक सर तो अधेड़ उम्र के किसी राजा का था, जो अपने सरपर मुक्ता का मुकुट पहने था और दूसरा सिर उसकी बेटी का लगता था—उसके सर पर भी राजकीय परिधान थे। वास्तव में वे दोनों सर बनावटी थे, परन्तु कलाकार की अद्भुत कार्यदक्षता व्यक्त कर रहे थे।

उसके बाद दो सीढ़ियाँ थीं, सोने की। उनके ऊपर हीरा-मोती तथा अन्य जवाहिरातों से जमीन पर बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा था 'रक्त-मन्दिर'। वे अक्षर इतने चमकदार थे कि उनमें से एक प्रकार की बहुत तेज रोशनी निकल रही थी। यही वह रोशनी थी, जिससे वह बड़ा-सा कमरा जगमगा रहा था।

विजय डर गया। तो क्या यही वह भयानक 'रक्त मन्दिर' है, जिसके विषय में वह अपने यहाँ सुन चुका था।

वह न जाने कब तक वहाँ खड़ा रहता, अगर बाहर कहीं से किसी स्त्री के चिल्लाने की आवाज न सुनाई पड़ती।

उस चीख को सुनकर वह चौंक पड़ा। अब उसे ज्ञात हुआ कि वह एक ऐसे स्थान पर है जहाँ कदम-कदम पर खतरा आ सकता है। उसने झटपट अपनी 'गुरु-घंटाल' की पोशाक उतार कर एक कपड़े में लपेट कंधे पर रख ली। इसके बाद वह धीरे-धीरे बाहर की ओर बढ़ा।

प्रवेश द्वार खुला था और वह सहज ही में उसी राह से बाहर हो गया। परन्तु बाहर ही विजय ने कुछ विचित्र मनुष्यों को सोते देखा जो आकार-प्रकार, रूप रंग में बहुत विचित्र थे! शायद वे वहाँ के पहरेदार थे। यद्यपि वे भी मनुष्यों की ही तरह थे, परन्तु उनके शरीर का रंग एक दम गेरू-सा लाल था। उनके हाथ–पैर भी बेडौल थे। नाकें चिपटी थीं।

आहिस्ते से विजय आगे बढ़ा, ताकि वे पहरेदार जाग न पड़ें। परन्तु विजय के लाख सावधान रहने पर भी वे जाग ही पड़े और चोर-चोर करते हुए विजय के पीछे दौड़े। विजय सामने की ओर भाग चला।

'रक्त-मन्दिर' की विशाल अट्टालिका एक भारी उद्यान के बीच में बनी थी, वहाँ छिपने के लिए बहुत स्थान थे। विजय वहीं एक झुरमुट में जाकर छिप गया। पहरेदार अब तक चोर-चोर करते हुए उसे खोज रहे थे। विजय दम साधे खड़ा था।

एकाएक पुनः वैसी ही चीख की आवाज आई जैसी कि रक्त-मन्दिर में उसने सुनी थी। मालूम होता था कि कोई युवती किसी संकट में पड़कर चीख रही हो। चीख की आवाज कहीं पास ही से आ रही थी।

विजय आवाज की सीध पर जा पहुँचा। उसने देखा कि एक हट्टा-कट्टा मनुष्य एक युवती को पकड़े हुए है और उस पर बलात्कार करना ही चाहता है।

वह पुरुष यद्यपि उस देश के मनुष्यों जैसा ही कुरूप था, फिर भी

उसके शरीर पर फौजी वस्त्र थे और वह सेनापति-सा लग रहा था वह युवती राजकन्या-सी दिखाई दे रही थी। इस नये देश में आकर विजय ने वह पहली ही स्त्री मूर्ति देखी और समझ गया कि चाहे इस नये देश के पुरुष कुरूप ही क्यों न हों, परन्तु यहाँ की स्त्रियाँ अत्यन्त कोमलांगी तथा रूपवती हैं उस युवती की सूरत देखते ही विजय पहचान गया कि यह तो वही राजकन्या है जिसकी मूर्ति अभी-अभी वह रक्त-मन्दिर में देखता आ रहा है।

वह पुरुष कह रहा था—'तुम मुझसे बचकर नहीं जा सकती राजकुमारी नीरा! एक-न-एक दिन अवश्य ही जवानी से भरी हुई तुम्हारी यह देह मेरी गोद में खेलेगी। आओ आज इस नीरव रजनी में हम तुम यौवन का सुखद आनन्द लूटें।'

राजकुमारी 'दूर हो सेनापति व्योम। तुम कामी हो, व्यभिचारी हो! तुमने अब तक कितनी ही युवतियों के सुहाग लूटे हैं!'

व्योम—'भूलती हो राजकुमारी! मैं इस देश का सबसे बड़ा वीर हूँ। कौन है जो मेरी आज्ञा का उलंघन कर सके। स्वयं तुम्हारे पिता महाराज विशाल में भी यह ताकत नहीं कि मेरी अवहेलना कर सकें, इतना कहकर सेनापति व्योम ने विवश राजकुमारी नीरा को पकड़कर अपनी छाती से लगा लिया और मदांध होकर उसके कपोलों को चूमना चाहा। राजकुमारी चिड़िया-सी छटपटाने लगी।

अब इसके आगे विजय से न देखा गया। उसने पास ही पड़ा हुआ एक बड़ा-सा पत्थर उठा लिया और उसे भरजोर व्योम के सर पर दे मारा। मूर्छित होकर व्योम भूमि पर गिर पड़ा।

राजकुमारी भय से चीखकर विजय से बोली—'उफ! यह क्या किया तुमने?....यह आफत ढा देगा। इस देश में एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं जो इसका सामना कर सके।,

विजय—'परन्तु मैं इसका सामना अवश्य करूँगा राजकुमारी!'

राज०—'कौन हो तुम?'

विजय—'मैं एक विदेशी व्यक्ति हूँ सुन्दरी !'

राजकुमारी भय से चीख उठी—'तुम विदेशी हो ? युवक ! तुम विदेशी हो ?....भागो, नहीं तो यहाँ वाले तुम्हें जोवित न छोड़ेंगे। जाओ—भाग जाओ !'

विजय—'कैसे भागूँ, रास्ता भी नहीं मालूम है। मुझे तो एक पीतल की मूर्ति जबरदस्ती यहाँ तक घसीट लाई है।'

राज०—'पीतल की मूर्ति ?....ओह ! तो क्या आप वही हैं, जिनके विषय में हमारे पूर्वज कहते आते थे कि एक भयानक पीतल की मूर्ति एक विदेशी पुरुष को यहाँ पहुँचा जायगी। वह पुरुष बहुत सुन्दर होगा। वही 'रक्त-मन्दिर' का भेद खोलेगा। अच्छा, आप आइये मेरे साथ—नहीं तो यहाँ रहने पर आपकी जान न बचेगी।'

राजकुमारी विजय का हाथ पकड़कर आगे-आगे चली रास्ते में विजय का हाथ दबाकर कहा—'देखिये ! मुझे न भूल जाइयेगा।'

विजय ने कहा 'सुन्दरी ! तुम्हें मैं कभी नहीं भूल सकता। तुम सदैव मेरे हृदय-सिंहासन पर विराजमान रहोगी।' कहकर उसने अनायास ही राजकुमारी को अपने वक्ष के पास खींच लिया। राजकुमारी कुछ न बोली, केवल विजय की छाती से चिपटी रही।

परन्तु न जाने क्यों विजय काँप उठा। उसे याद हो आया कि उसने एक प्रण किया है और अभी तक उसका प्रण पूरा नहीं हुआ। जब तक वह अपनी प्रेत-आत्मा को नर-रक्त का पान न करा लेगा तब तक कोई सुख न भोग सकेगा।

राजकुमारी विजय को लेकर अपने कक्ष में आई और बोली—'मैं तुम्हें अपने महल में ही छिपाकर रखूँगी प्यारे ! कोई विपत्ति तुम पर न आने पायेगी। जब तुम 'रक्त मन्दिर' के अगाध धन के मालिक हो जाओगे, तब मैं तुम्हारी रानी बनूँगी।'

उस रात दोनों एक ही कमरे में सोये, परन्तु आधी रात को ही एक प्रकार की भयंकर आवाज सुनकर दोनों की नींद टूट गई।

दोनों ने भय के साथ देखा कि उस कमरे में एक भद्दी काली परछाईं खड़ी है।

• •

जिसे इस समय विजय ने अपना क्रीड़ा-क्षेत्र बना रखा था, उस देश का नाम था 'चंगदेश'। वहाँ धन का पारावार न था। उस देश में गरीब न थे। सभी धनवान तथा समृद्धिशाली थे। सभी के मकान स्वर्णनिर्मित थे। सड़कों पर भी सोने के टुकड़े पड़े नजर आते थे। सड़क शुद्ध ताँबा द्वारा बनी थीं। नदियों के तट पर चाँदी और सोने के घाट थे, सोने की नौकायें थीं। कहने का तात्पर्य यह है कि वहाँ पर हीरा-मोतियों की वर्षा होती रहती थी। चंगदेश के पास ही एक स्वर्ण पर्वत था—जो एकदम सोने का था।

चंगदेश के राजा का नाम था विशाल। महाराज विशाल बूढ़े हो चले थे। उनको केवल एक कन्या थी, जिसका नाम राजकुमारी नीरा था। उस देश का सेनापति एक वीर योद्धा था। नाम था उसका व्योम। वह बड़ा ही क्रूर एवं व्यभिचारी था। परन्तु उसके डर से कोई भी बोलता न था। स्वयं महाराज विशाल भी उससे भयभीत रहते थे। यही कारण था कि उस रात 'रक्तमन्दिर' के पास उसने राजकुमारी पर दुराचार करना चाहा था। वह तो अपने कार्य में सफलीभूत भी हो चुका होता, यदि दैवात् विजयसिंह वहाँ न पहुँच जाता।

लगभग आधी रात को सेनापति व्योम की मूर्छा टूटी। उसने देखा कि वह अब भी उसी स्थान पर पड़ा हुआ है, जहाँ उसे राज-

कुमारी को अपना बनाना चाहा था। अभी तक वह यह न जान सका था कि वह आदमी कौन था जिसने उस जैसे दुर्दान्त वीर से दुश्मनी करने की ठानी थी और उसके सरपर पत्थर मारकर उसे मूर्छित कर डाला था। फिर भी व्योम उस आदमी पर बहुत क्रोधित था और सबसे ज्यादा क्रोध उसे राजकुमारी पर आ रहा था।

वह उठा और सीधे राजमहल की ओर रवाना हुआ। महाराज विशाल के कमरे के सामने पहुँचकर उसने भीतर आने की खबर भिजवाई। यदि और कोई होता तो इस आधी रात के वक्त महाराज से मुलाकात न हो सकती, मगर व्योम की कौन अवहेलना करता? लाचार महाराज ने उसे भीतर बुलवाया।

आते ही व्योम ने कहा–'महाराज मालूम होता है कि अब आप-लोगों के बुरे दिन आने वाले हैं।'

महा०—'क्या हुआ व्योम?'

व्योम—'राजकुमारी नीरा ने मेरा अपमान किया है। मैं इसका प्रतिशोध लूंगा, तभी मेरी ज्वाला शान्त होगी।'

महा०—'राजकुमारी नीरा ने तुम्हारा अपमान किया है? झूठ बोलते हो नीच सेनापति! तुमने ही राजकुमारी का अपमान किया होगा, राजकुमारी तुम्हारा क्या अपमान कर सकती है?'

व्योम—"यह न भूल जाइये महाराज! कि इस समय चंगदेश की बागडोर पूरी-पूरी मेरे हाथों में है। मैं चाहूँ तो आपको अभी राजगद्दी से उतारकर स्वयं बैठ सकता हूँ। इस देश में कौन ऐसा है, जो मेरे आगे सर उठा सके। आपको राजकुमारी नीरा का विवाह मेरे साथ करना ही होगा।'

महा०—'चुप! चुप व्योम! तुन्हें चंगदेश के राजकुल के मान-अपमान का ध्यान है या नहीं? जाओ! मैं प्रातःकाल राजकुमारी को बुलाकर पूछूंगा।'

व्योम चुपचाप चला गया।

× × ×

विजय और राजकुमारी नीरा एक दूसरे को अपनी छाती से लगाये हुए सोये थे, परन्तु किसी प्रकार की आवाज सुनकर उनकी नींद टूट गई। उन्होंने देखा—कमरे के एक कोने में कोई भद्दी-सी काली परछाईं खड़ी थी।

विजय ने उसे तुरन्त पहचान लिया। वह उसकी साधित प्रेत-आत्मा थी और उसे इस बात का स्मरण दिलाने आई थी कि अभी तक वह प्यासी ही है।

राजकुमारी डरकर विजय से लिपट गई। परन्तु विजय ने उसे धैर्य बँधाया और कहा—'डरो नहीं प्रिये! यह तो अपना हितैषी है। मैंने इससे प्रण किया था कि जब तक तुझे रक्त न पिला दूँगा, तब तक कभी सुख-सम्भोग में लिप्त न होऊँगा। आज मैंने अनायास ही अपना प्रण तोड़ा है, अब यह क्रुद्ध होकर मेरे पास आया है। यदि इसी समय इसे रक्त न पिला सका, तो यह मेरा रक्तपान करेगा।'

राज०—'यह रक्त चाहता है? अच्छा देखो!—'रक्त-मन्दिर' में एक विशाल रक्त-कुण्ड है। वह मानव रक्त से लबालब भरा है। इस चंगदेश में आज तक जितने विदेशी आये हैं, सभी को 'रक्त-मन्दिर' में बलिदान किया गया है। उन्हीं का रक्त उस रक्त-कुण्ड में एकत्रित है। वह रक्त-कुण्ड बीस हाथ लम्बा, दस हाथ चौड़ा तथा सौ हाथ गहरा है।'

विजय सुन कर काँप उठा—'उफ! कितना रक्त होगा उस रक्त-कुण्ड में?'

कुछ देर बाद वह प्रेत-आत्मा से बोला—'पवित्र आत्मा! 'रक्त-मन्दिर' में जाकर तुम खूब रक्तपान कर सकते हो, अवश्य ही तुम्हारी प्यास बुझ जायगी।'

इतना सुनते ही वह काली परछाई लुप्त हो गई। विजय और राजकुमारी पुनः प्रेमालाप में निमग्न हो गये।

राजकुमारी ने अभी तक विजय को 'गुरुघन्टाल' की पोशाक में न देखा था। विजय ने वह पोशाक एक जगह यत्नपूर्वक रख दी थी।

प्रातःकाल होते ही एक प्रकार का भयानक आतंक समग्र चंगदेश में छा गया। महाराज के मुख पर चिन्ता की हवाइयाँ उड़ने लगीं। बात यह थी कि आज प्रातःकाल एक विचित्र घटना का पता लगा था।

वह घटना यह थी कि रक्त-मन्दिर के महापुजारी जिस समय नित्य की भाँति आज उस अगाध रक्त-कुण्ड का निरीक्षण करने गये, उसे एकदम सूखा पाया।

यही भय का कारण था क्योंकि पूर्वकाल से ही यह किंवदन्ती चली आ रही थी कि जिस दिन यह रक्त-कुण्ड सूख जायगा, उस वर्ष 'रक्त मन्दिर' के भयानक भेदों का एक विदेशी द्वारा रहस्योद्घाटन होगा। चंगदेश के निवासी विदेशियों को अत्यन्त घृणा की दृष्टि से देखते थे और वे नहीं चाहते थे कि 'रक्त-मन्दिर' के अगम कोष पर किसी विदेशी व्यक्ति का अधिकार हो। इस विषय पर विचार करने के लिए चङ्गदेश के अधीश्वर महाराज विशाल की अध्यक्षता में एक महती सभा हुई।

महाराज ने कहा—"प्रिय प्रजाजनों! आज तक यह चङ्गदेश अपना था, यहाँ कि सभ्यता तथा यहाँ का अतुलित वैभव सब कुछ अपने थे, परन्तु अब विपत्ति के दिन आये दीखते हैं। रक्त-कुण्ड का सूख जाना इस बात का द्योतक है किसी विदेशी की छाया हमारे देश तक पहुँच चुकी है और शीघ्र ही 'रक्त-मन्दिर' का समग्र-वैभव उसके अधिकार में चला जायगा। यद्यपि 'रक्त-मन्दिर' में कितना धन है—क्या क्या है, यह कोई नहीं जानता, परन्तु यह प्रचलित है कि 'रक्त-मन्दिर' के भीतर अगम कोष एकत्रिक है, जिससे एक नई ही

दुनिया बसाई जा सकती है। आज हम इसी विषय पर विचार करेंगे कि विदेशी सत्ता को प्रभावित करना चाहिये या नहीं ?'

व्योम– 'नहीं। हर्गिज नहीं। हमें अपनी जान देकर भी अपने स्वत्व की रक्षा करनी चाहिये।'

सर्वसम्मति से यही प्रस्ताव स्वीकृत हुआ और सभा विसर्जित हुई।

उसी दिन रात्रिकाल में राजकुमारी नीरा और विजय में खूब प्रेमालाप हो रहा था। राजकुमारी नीरा अद्वितीय सुन्दरी थी। विजय भी पुरुष श्रेष्ठ था। राजकुमारी उस देश की सबसे अधिक सुन्दरी थी, उसके मुख पर चाँद खेलता था। उसके उन्नत उरोजों को देखकर कितने ही मुग्ध हो उठते थे। विजय उसकी अनुपम रूप-राशि पर मुग्ध था। उस समय दोनों आनन्द में तल्लीन थे। एक दूसरे से लता की तरह दोनों चिमटे हुए थे। ऐसा लगता था मानो वे कभी अलग न होंगे।

विजय बोला—'प्रिये ! मन चाहता है कि सदैव तुम्हें इसी प्रकार हृदय में दाबे पड़ा रहूँ, परन्तु कर्तव्य मुझे बाध्य किये देता है मैं चाहता हूँ कि पहले समग्र सुखों का परित्याग करके 'रक्त-मन्दिर' का रहस्य खोलूँ। परन्तु मैं देख रहा हूँ कि यह कार्य अत्यन्त कठिन है। बिना तुम्हारी सहायता के यह असम्भव है राजकुमारी !'

राज०—'यद्यपि हमारे देश में विदेशी को प्रेम की दृष्टि से देखना तथा उसकी सहायता करना अत्यन्त घृणित समझा जाता है तथा हमारे देश के राजनियम के विरुद्ध भी है—परन्तु मैं अवश्य ही तुम्हारी सहायता करूँगी। पर यह समझ लो प्रियतम ! कि यह कार्य अत्यन्त कठिन है। आज की सभा में तुम्हारे विरुद्ध राय पास हुई है। सभी, यहाँ तक कि पिताजी भी तुम्हारे विरुद्ध हैं और अवश्य ही तुम्हारे मार्ग में आशातीत बाधा पहुँचायेंगे। अच्छा हो कि तुम अपना यह विचार छोड़ दो।'

विजय—'ऐसा न कहो प्रिये ! मुझे हतोत्साह न करो। मुझे कोई मार्ग अवश्य बताओ।'

राज०—'देखो ! बिना पिताजी की सहायता के मैं कुछ भी नहीं कर सकती। पिताजी के पास एक ऐसी पुस्तक है, जिसमें 'रक्तमन्दिर' के तिलस्म का पूरा हाल लिखा है। परन्तु पिताजी वह पुस्तक मुझे कभी न देंगे।'

विजय 'तुम बताओ कि वह पुस्तक तुम्हारे पिताजी कहाँ रखते हैं ? मैं स्वयं ले लूँगा। तुम जरा भी शंका न करो, मेरी अतुलित शक्ति का तुम्हें अभी पता नहीं है।'

राज०—'देखो ! पिताजी की खास आलमारी में वह पुस्तक रहती है। परन्तु मुझे विश्वास नहीं होता कि तुम वहाँ जा सकोगे। जाने पर तुम्हारी जान का खतरा है।'

विजय—'तुम निश्चिन्त रहो प्रिये ! मेरा कोई कुछ न बिगाड़ सकेगा तुम मुझे सभी आवश्यक बातें बता दो, क्योंकि मैं महाराज के कमरे से पुस्तक लेकर तुरन्त ही रवाना हो जाऊँगा। फिर 'रक्त-मन्दिर' से वापस आकर ही तुमसे भेंट करूँगा।'

राज०—'पिताजी के कमरे से ही एक गुप्त सुरंग 'रक्त मन्दिर' तक गई है। तुम वह पुस्तक लेकर उसी सुरंग द्वारा भागकर 'रक्त-मन्दिर' में आ जाना। वहाँ पर तुमने महाकाल के मुख के सामने तथा शेरों की मूर्तियों के बीच में दो मानवीय मूर्तियाँ देखी होंगी। उनमें एक मूर्ति मेरी जैसी है और दूसरी पिताजी की है। उसी के सामने दीवार में एक हीरे की मूँठ लगी है, उसे सात बार दाहिनी ओर घुमाना तो मेरी और पिताजी की मूर्तियाँ उस महाकाल के मुख की ओर घूम जायँगी। उसी समय उस महाकाल के मुख से एक डरावना शब्द निकलेगा और वह अपना मुख फाड़ देगा। तुम सरलतापूर्वक उसके मुख में चले जाना।'

विजय—'धन्यवाद !'—कहकर उठ खड़ा हुआ और 'गुरुघंटाल' की तिलस्मी पोशाक कन्धे पर रख ली। उसने उस पोशाक को

राजकुमारी को दिखाना ठीक न समझा। उसने सोचा शायद उस भयानक पोशाक को देखकर राजकुमारी डर जाय।

उसने राजकुमारी को गले से लगाकर उसका चुम्बन किया और तब चल पड़ा। कुछ दूर जाकर उसने अपने बदन पर 'गुरुघंटाल' की पोशाक पहन ली। उस पोशाक में यह असर था कि उस पर किसी भी हथियार से जख्म नहीं पहुँच सकता था और उसे पहनने वाला मनुष्य जब चाहे तब लुप्त हो सकता था।

× × ×

महाराज विशाल के कमरे से सन्नाटा छाया हुआ है। केवल एक मोमी शमादान जल रहा है, जिसकी मद्धिम रोशनी कमरे भर में फैली हुई है।

महाराज विशाल इस समय पलंग पर पड़े हुए प्रगाढ़ निद्रा के वशीभूत हैं। सामने की दीवाल में एक आलमारी दृष्टिगोचर हो रही है, जिसमें एक मजबूत ताला बन्द है। कमरे में दो दरवाजे हैं, जो इस समय खुले हुए हैं। महाराज निद्रा देवी की उपासना में निमग्न हैं। उन्हें वाह्यजगत की जरा भी सुध नहीं है।

उस कमरे में जरा सी भरभराहट की आवाज हुई और एक क्षण के लिए एक कोने में किसी विकराल वनमानुष की सूरत खड़ी दिखाई दी, फिर तुरन्त ही गायब हो गई।

एकाएक उस आलमारी का ताला अपने आप ही खुल गया और आलमारी के पल्ले भी उसी प्रकार अपने आप खुल गये। आलमारी के अन्दर की चीजें इधर-उधर सरकने लगीं, मानो कोई अदृश्य हाथ उन्हें इधर-उधर सरका करके कोई मतलब की वस्तु खोज रहा हो। एकाएक एक सोने के जिल्द की किताब अपने आप ही आलमारी से बाहर निकल आई।

उसी समय कुछ खटका हुआ और महाराज विशाल को निद्रा

खुल गई। उन्होंने देखा कि उनकी आलमारी के पल्ले खुले हैं और उनकी तिलस्मी किताब आलमारी से बाहर निकल कर हवा के बीच में लटकी हुई है। अनुभवी महाराज शीघ्र ही समझ गये कि इस समय उनके कमरे में कोई भयानक घटना हो रही है। उन्होंने उठने का प्रयत्न किया, उसी समय बादल के गरजने की-सी आवाज आई—'ठहरो! उठने की कोशिश न करो।'

महाराज ने इधर-उधर देखा परन्तु कोई दीख न पड़ा तो फिर यह आवाज कहाँ से आई?

महाराज ने पड़े-ही-पड़े अपने तकिये के नीचे से एक चश्मा निकाला और उसे अपनी आँखों पर लगा लिया। वह चश्मा भी तिलस्मी था और उसके लगाये रहने पर अदृश्य वस्तुयें भी देखी जा सकती थीं। उसी चश्मे से महाराज ने देखा कि उनकी आलमारी के पास एक भयानक बनमानुष उपस्थित है और उसी के हाथ में उनकी तिलस्मी किताब है। महाराज तड़पड़ा कर उठ बैठे और पास ही लगी हुई एक मूठ उमेठ दी, जिससे आलमारी के दोनों खुले हुए दरवाजे फट-फट कर अपने आप ही बन्द हो गये।

तब महाराज तड़प कर बोले—'खबरदार! उस पुस्तक को हाथ न लगाना। अब तुम बचकर नहीं जा सकते। जानते हो—मैं तिलस्म का राजा हूँ। ऐसी पोशाकें बहुत देख चुका हूँ मैं!'

विजय ने सोचा कि अब तो वह किताब पा ही चुका हूँ, अतः जल्द ही भाग चलना चाहिये। कौन जाने महाराज उसे फँसा ही लें—वे तिलस्म के सम्राट जो ठहरे!

महाराज हाथ में तिलस्मी तलवार लेकर आगे बढ़े! उसी समय एक जोरों के धड़ाके की आवाज हुई और उस कोठरी में बहुत-सा धुआँ पैदा हो गया। दो मिनट बाद जब वह धुआँ साफ हुआ तो बनमानुष वहाँ न था। वह तिलस्मी किताब लेकर गायब हो चुका था।

महाराज चिल्ला पड़े—'उफ ! वह तिलस्मी किताब लेकर भागना चाहता है। पकड़ो ! पकड़ो !!'—कहते हुए महाराज ने पास ही दीवाल में लगे हुए कई चरखे घुमा दिये, फिर ठंढी साँस लेकर बोले -'देखें अब वह शैतान कैसे बाहर जाता है ? मैंने सभी रास्ते बंद कर दिये हैं—सिपाहो....?'

तुरन्त ही सैकड़ों सिपाही दौड़े हुए आये। महाराज ने उन्हें सब कोना-कोना छान डालने को कहा। सिपाही तेजी के साथ चले गये, परन्तु बहुत खोजने पर भी उस बनमानुष का पता न लगा।

आधी रात के सन्नाटे में गुरुघण्टाल की पोशाक पहने तथा तिलस्मी किताब लिए हुए विजय सकुशल 'रक्त-मन्दिर' में पहुँच गया। वह अन्तर्ध्यान था, अतः पहरेदारों की दृष्टि उसपर न पड़ सकी। रक्त-मन्दिर में आकर उसने दीवाल में लगे हुए यंत्र को घुमा दिया, जैसा कि राजकुमारी ने उससे कहा था। यंत्र घुमाते ही उन दोनों मानवी मूर्तियों का मुख घूमकर महाकाल के मुख की ओर हो गया और महाकाल ने अपना मुख पूरा फाड़ दिया, जिसमें खड़ा हुआ एक आदमी मजे में चला जाय। विजय बेधड़क मुख में घुस गया।

उसके घुसते ही महाकाल ने अपना मुख बंद कर लिया, केवल थोड़ा सा खुला रहा, जैसा पहले था। दोनों मानवीय मूर्तियाँ भी घूम कर यथावत् हो गईं। विजय ने 'रक्त-मन्दिर' के भयावह तिलस्म में प्रवेश किया।

× × ×

प्रातःकाल होते ही राजमहल में शोर मच गया। सभी भय से काँपने लगे। बात यह थी कि आज रात में एक विकराल बनमानुष ने महाराज विशाल की तिलस्मी किताब चुरा ली थी और लाख खोजने पर भी उसका पता न लग सका था।

यही भय का कारण था। राजकुमारी ने यह समाचार सुना। वह बहुत प्रसन्न हुई परन्तु यह जानकर कि तिलस्मी पुस्तक ले जाने वाला विजय नहीं बल्कि एक बनमानुष है, वह कुछ चिन्तित भी हुई क्योंकि विजय मनुष्य था और बनमानुष की पोशाक में उसने विजय को कभी देखा न था। उसने समझा कि यह बनमानुष कोई दूसरा ही आदमी है। अब विजय के लिए उसे बड़ी ही चिन्ता हुई। विजय का क्या हुआ? कहाँ चला गया? उसे कुछ पता न लग सका।

● ●

उस विकट जंगल में खड्गबहादुर और रसिक को भयानक घटनाओं का सामना करना पड़ा। लड़ते-झगड़ते किसी प्रकार जब वे नदी के किनारे पहुँचे, तो देखा कि विकराल मगर उनके नाव की पतवार को अपने मुँह में पकड़े हुए उसे कोई विशाल जन्तु समझकर नदी के बीच में खींचे जा रहा है।

अब भागने का रास्ता एकदम बन्द था, उधर पीछे दानवों का झुण्ड पत्थर फेंक रहा था। बड़ी विकट समस्या आ खड़ी हुई थी। अन्त में रसिक के तीक्ष्ण दिमाग में तुरन्त ही एक युक्ति सूझ गई। उसने तमंचा साधकर कई गोलियाँ उस मगर पर छोड़ी। सभी गोलियाँ उस मगर को लगीं और वह मृत्यु की यन्त्रणा से नदी भर में चीत्कार करता हुआ दौड़ने लगा नाव की पतवार उसने छोड़ दी। दो ही मिनट बाद उस मगर की रक्तरंजित लाश नदी के स्वच्छ वक्षस्थल पर उतराने लगी।

अब जरा भी समय नष्ट न करके खड्गबहादुर और रसिक अपनी नाव तक पहुँचने के लिए पानी में कूद पड़े। दानवों ने दौड़कर नदी तक उनका पीछा किया और पत्थर फेंके, परन्तु उन दोनों की कोई हानि न हुई।

दानवगण पानी में न उतरे। नदी के किनारे ही वे खड़े रहे। ऐसा प्रतीत होता था मानों वे पानी से बहुत डरते हों। खड्गबहादुर और रसिक तैरते हुए सरलतापूर्वक अपनी नाव पर जा चढ़े। नाव ज्यों की त्यों थी, यद्यपि उसकी पतवार मगर के पकड़ लेने के कारण कुछ खराब हो गयी थी। फिर भी काम चलाऊ थी।

नाव पर चढ़कर एक बार दोनों ने भयभीत दृष्टि से किनारे की ओर देखा। दानवगण अब भी खड़े थे परन्तु नदी के पानी में उतरने का साहस नहीं कर रहे थे।

खड्ग० ने कहा—'देखिये! इसीलिये उस पुस्तक में जल द्वारा यात्रा करने को लिखा था। स्थल द्वारा यात्रा करने पर कोई मनुष्य इन भयानक दानवों से बच नहीं सकता। शायद ये दानव पानी में उतरने से डरते हैं।'

रसिक०—'ऐसी ही बात है। परन्तु देखिये, ये सब हमारी नाव के साथ-साथ किनारे-किनारे चल रहे हैं। अब भी इनका इरादा भयानक प्रतीत होता है।'

बात सत्य थी। उन दानवों ने उनका पीछा अब तक नहीं छोड़ा था यद्यपि उन्हें पानी में उतरने का साहस नहीं था, फिर भी वे नाव के साथ-साथ नदी के किनारे चल रहे थे। कई कोस आ जाने पर भी उन्होंने पीछा नहीं छोड़ा, अब रसिक आदि को चिन्ता सवार हो गई।

नाव को नदी के किनारे लगाना असम्भव था और बिना किनारे लगाये नाव पर ही कब तक यात्रा की जायगी? बिना किनारे नाव लगाये पेट की ज्वाला किस प्रकार शान्त होगी? उधर दानवों की टोली बराबर नाव के साथ-साथ स्थल मार्ग से चल रही थी। जीवन और मृत्यु का भयानक प्रश्न था।

इसी दुविधा में पड़े-पड़े नाव दो दिन और दो रात तक बराबर चलती गई। इन दोनों ने नाव को बराबर नदी के मध्य में रखा,

किनारे कभी नहीं लगाया। दानवों की टोली भी बराबर नाव के साथ चलती रही।

अब क्षुधा को रोक सकना असम्भव था। डाँड़ चलाने की शक्ति किसी में भी नहीं रह गई थी। आज दो दिन से केवल जल पाकर दोनों रहते आ रहे थे। परन्तु इस प्रकार कितने दिन तक काम चल सकता था ?

अन्त में दोनों ने डाँड़ चलाना बन्द कर दिया। नाव बहुत धीमी गति से अग्रसर होने लगी। खड्गबहादुर और रसिक जीवन से निराश होकर नाव के पेंदें में लेट गये और ईश्वर का ध्यान करने लगे।

उसी समय पानी के ऊपर कोई काली चीज दिखाई पड़ी। वह सूंस था। उसे देखकर रसिक की आँखें आशा से कुछ चमक उठीं। वह उठकर बैठ गया और हाथ में अपना तमंचा ले लिया। लगभग १० मिनट बाद फिर एक सूँस पानी के ऊपर उतराया। रसिक ने अपने तमंचे का घोड़ा दबा दिया। धाँय की आवाज हुई। नदी के किनारे पीछा करते हुए दानवों ने भय के साथ उस आवाज को सुना। वे उस यंत्र से बहुत डरते थे, जो जरा-सी देर में बलवान मनुष्यों की हत्या कर सकता था।

रसिक का वार खाली न गया और कुछ ही देर में वह सूँस मर कर नदी के वक्ष पर उतराने लगा। अतीव उत्साह के साथ रसिक ने उस मरे हुए सूँस को नाव पर लादा और दोनों भूखे बाघ की तरह उसका कच्चा मांस नोच-नोच कर खाने लगे।

वह दृश्य बड़ा ही भयानक एवं कष्टकर था। किसी तरह दो दिन तक उस सूँस के मांस से काम चल सका, इसके बाद और भी कठिन समस्या आ उपस्थित हुई।

अब इनकी नाव एक ऐसी जगह पहुँच गई थी, जहाँ नदी के किनारे-किनारे एक छोटी-सी पहाड़ी चल रही थी। पुस्तक में बताये

हुए संकेत के अनुसार यही वह स्थान था, जहाँ नाव की यात्रा छोड़कर उन्हें पैदल उत्तर पश्चिम की यात्रा करनी थी—अभी तक वे सीधे उत्तर की यात्रा करते आये थे।

परन्तु अब भी उन दानवों का भय लगा हुआ था। यद्यपि पिछले दो दिनों से उनकी सूरतें दिखाई नहीं पड़ी थीं। रसिक का ख्याल था कि अवश्य ही वे लोग नदी के किनारे छिपे हुए उनका पीछा कर रहे हैं। उन्हें न देखकर यदि वे लोग अपनी नाव नदी तट पर लगावें तो उन भयानक दानवों की मनोकामना सिद्ध हो।

यद्यपि रसिक का यह अनुमान ही था, फिर भी उन्हें नाव नदी के किनारे लगानी ही पड़ी, नहीं तो रास्ता भूल जाने का भय था।

अतः डरते हुए उन्होंने नाव किनारे लगाई। दानवों का भय पूर्ववत् था, परन्तु एक भी दानव जब दिखाई न पड़ा तब उन दोनों का साहस बढ़ा। उन्होंने नाव जमीन पर खींच कर एक पेड़ के साथ बाँध दी और अपना-अपना सामान लेकर जो रास्ता उस पुस्तक में बताया गया था, उसी से रवाना हुए।

उन्हें क्षुधा सता रही थी, परन्तु उस जङ्गल में फल का कोई पेड़ दृष्टिगोचर न हुआ। लाचार खाली पेट ही वे आगे बढ़ने लगे। ज्यों-ज्यों आगे बढ़ते गए, त्यों-त्यों जङ्गल भी काँटेदार और घना मिलने लगा। उनके पैरों में बहुत से काँटे चुभ गए। कपड़े चिथड़े-चिथड़े होकर फट गये। फिर भी उन्होंने हिम्मत न छोड़ी। दो दिन तक जङ्गल में कुछ भी भोजन न मिल सका। कोई जानवर भी न मिला कि उसका शिकार कर वे अपनी क्षुधा शान्त करते।

भोजन की समस्या बड़ी विकट थी परन्तु फिर भी उन्होंने धैर्य नहीं खोया और पेड़ों की पत्तियाँ चबा-चबा कर अपनी क्षुधा शान्त की।

इसी प्रकार कई दिन व्यतीत हुए। अन्त में एक दिन भयावने जंगल का अन्त हुआ, परन्तु इस बार उन्होने अपने सामने वह दृश्य

देखा कि उनके छक्के छूट गये। जहाँ तक दृष्टि जाती थी, ऊसर ही ऊसर दृष्टिगोचर होता था। सैकड़ों कोस का वह ऊसर था। जिसमें पेड़ों की छाया भी नहीं, पानी का एक श्रोत भी नहीं, भोजन प्राप्त करने का तनिक भी साधन नहीं। परन्तु वे दोनों लाचार थे। 'रक्त-मन्दिर' के अगम कोष की लालच ने उन्हें शक्ति प्रदान कर दी थी।

वे यह सोचकर आगे बढ़े कि कदाचित दो-चार कोस आगे चलने पर कोई भोज्य पदार्थ मिल जाय। परन्तु ज्यों-ज्यों वे उस ऊसर में अग्रसर होने लगे त्यों-त्यों सूर्य भगवान की सीधी किरणें उनकी खोपड़ी जलाने लगीं पास में शरण लेने के लिए एक भी पेड़ न था। नीचे की जमीन तवे की तरह जल रही थी। प्यास के मारे कण्ठ सूख रहा था। भूख के कारण तबीयत बेचैन थी। अन्त में आगे चलना असंभव हो गया और वे दोनों उसी तपती हुई भूमि पर लेटकर छटपटाने लगे।

दिन किसी तरह कटा, जब रात हुई तो उदय होते हुए चन्द्रदेव की किरणों ने उन्हें कुछ जीवन प्रदान किया। वे साहस करके उठे और आगे बढ़े। रात बीतते तक चलते ही गये। सुबह की सुफेदी आसमान पर फैल चुकी थी, जब उन दोनों ने अपने सामने एक हरी-भरी जमीन देखी।

उनका हृदय प्रफुल्लित हो उठा। वे लम्बे-लम्बे डग बढ़ाते हुए वहाँ पहुँचे तो देखा वह नीम के वृक्षों का एक वृहदाकार भयावना जंगल था। जहाँ तक दृष्टि जाती थी, नीम के वृक्ष ही दृष्टिगोचर होते थे—जिनकी कड़वी पत्तियों से भला कैसे उन दोनों की क्षुधा बुझ सकती थी। वे उस नीम के भयानक वन में इधर से उधर घूमने लगे, कि शायद कोई दूसरा वृक्ष मिल जाय जिसकी पत्तियाँ या छाल उनकी भूख बुझा सकें। परन्तु उनकी आशा सफलीभूत न हुई और दोनों क्षुधा-तृष्णा से सन्तप्त होकर तड़पते हुए कटे वृक्ष की तरह जमीन पर गिर पड़े।

इस समय दोनों की विचित्र दशा थी। प्यास और भूख से तड़प रहे थे वे—परन्तु जीवन-रक्षा का कोई उपाय उनके पास न था सिवा इसके कि उनमें से एक साथी दूसरे को मार कर खा जाय।

और यही हुआ भी, खंगबहादुर पर क्षुधा ने इतना तेज आक्रमण कर दिया कि उसका मुँह पिशाच जैसा भयंकर हो उठा। उसने अपने जेब से तमंचा निकाला और रसिक की ओर साधा।

रसिक उस समय अर्द्धचैतन्य अवस्था में भूमि पर पड़ा हुआ था परन्तु उसने देख लिया कि खंगबहादुर उसे मारकर खा जाना चाहता है। अतः शीघ्रता से उसने भी अपना तमंचा निकाल लिया और गरज कर बोला 'खबरदार! मुझे मारकर खा जाने का इरादा छोड़ो, नहीं तो मैं भी तुम्हें जिन्दा नहीं छोड़ूँगा। धैर्य से काम लो खंगबहादुर!'

खंग०—'शैतान! मैं तुझे अवश्य मारूँगा। तुम्हीं ने मुझे ऐसी राय दी थी कि आज मैं पानी-दाने बिना एक उजाड़ देश में मर रहा हूँ।'

खंगबहादुर ने तमंचे के घोड़े पर हाथ रखा, उसी समय रसिक ने खंगबहादुर की कलाई ताककर गोली चला दी। खंगबहादुर का हाथ जख्मी हो गया और तमंचा उसके हाथ से छूटकर भूमि पर जा गिरा। रसिक ने आगे बढ़कर वह तमञ्चा उठा लिया। फिर उसी प्रकार समय बीतने लगा। दोनों में से किसी को भी हिल सकने की शक्ति न थी। दोनों मृत्यु की अन्तिम घड़ियाँ गिनते हुए पड़े थे—परन्तु कितनी भयानक होगी वह मृत्यु!

दो दिन और बीते। अब रसिक का भी क्षुधा की यन्त्रणा से बुरा हाल हो गया था वह सोचने लगा—'यह निकम्मा खंगबहादुर मेरे साथ रहकर क्या करेगा? क्यों न इसे मारकर मैं अपनी भूख बुझाऊँ?

रसिक ने खंगबहादुर को मारकर खा जाने का दृढ़ निश्चय कर लिया। उसने अपना तमंचा निकाला। खंगबहादुर का भी तमंचा उसी के पास था, अतः उनसे डरने की कोई आवश्यकता न थी।

जब खंगबहादुर ने देखा कि उसे ग्रसने के लिये रसिक का तमंचा तैयार है, तो वे दीन-वाणी में गिड़गिड़ाते हुए कहने लगे—'मुझे न मारो....न मारो रसिक! मैं तुम्हारे हाथ जोड़ता हूँ। पाँव पड़ता हूँ।'

रसिक—'मैं तुम्हें जरूर मारूँगा—जरूर मारूँगा और अपनी भूख बुझाऊँगा—तुम्हारे खून से अपनी प्यास बुझाऊँगा! तुम निकम्मे हो। तुम जीवित रहकर क्या करोगे?'

कहते हुए रसिक ने एक पैशाचिक अट्टहास किया, जिससे नीम का वह भयानक बन गूँज उठा। रसिक ने अपने तमञ्चे के घोड़े पर हाथ रखा। खंगबहादुर के नेत्रों के सामने मृत्यु की, दुर्दशाजनक मृत्यु की भयंकर प्रतिमा नृत्य करने लगी।

● ●

'रक्त-मन्दिर' के भयानक तिलस्म में भ्रमण करना विजय ने जितना कठिन सोचा था, उससे कहीं अधिक कठिन निकला।

यदि उसके पास वह तिलस्मी पुस्तक तथा 'गुरुघण्टाल' की पोशाक न होती, तो वह कदापि 'रक्त-मन्दिर' के गुप्त भागों की सैर न कर सकता। ये वस्तुयें साथ रहने पर भी स्थान-स्थान पर उसे दुरूह कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। अगर उसमें असीम साहस न होता, तो वह अवश्य घबड़ा जाता और किसी न किसी भयानक तिलस्मी घटना में पड़कर अपना प्राण विसर्जन कर बैठता।

विजय ने कोई खटका दबाया और दिवाल से हटकर दूर खड़ा

हो गया। खटका दबाते ही घड़-घड़ की आवाज होने लगी। दो मिनट बाद ही उस साफ दीवाल में एक चौड़ा दरवाजा दृष्टिगोचर होने लगा। उस दरवाजे की राह वह बहुत शीघ्र एक हरे-भरे उद्यान में पहुँच गया। उस उद्यान की शोभा निराली थी। उसके मध्य भाग में संगमरमर का एक श्वेत मकान बना हुआ था।

अपनी इस यात्रा में विजय ने जितने बँगले और उद्यान देखे थे, उन सबसे निराला एवं सुन्दर था। जब से वह 'रक्त-मन्दिर' के तिलस्म में घुसा था, तब से बराबर गुरुघन्टाल की भयानक पोशाक अपने शरीर पर धारण किए था। इस समय भी वह भयंकर पोशाक उसके बदन पर थी, जिससे उसकी आकृति एक दीर्घाकार बनमानुष-सी लग रही थी। वह उद्यान में इधर-उधर टहलने लगा।

उद्यान में टहल लेने के पश्चात उसने बँगले का निरीक्षण करना प्रारम्भ कर दिया। यह कार्य भी समाप्त कर चुकने पर वह एक कमरे में आकर आराम करने लगा। उस कमरे में पलंग आदि आवश्यक वस्तुयें प्रस्तुत थीं। लेटे ही लेटे उसने वह तिलस्मी किताब निकाली और उसे पढ़ने लगा। क्योंकि उसे अपना आगे का कार्य-क्रम निर्धारित करना था।

उस पुस्तक में यों लिखा था—'यहाँ तक तुम पहुँच गये। यह प्रसन्नता की बात है, परन्तु इसके आगे का 'रक्त-मन्दिर' का तिलस्म भयानक कारीगरी से भरा हुआ है। उसमें जाते समय बहुत होशियारी और बुद्धि की आवश्यकता पड़ेगी, साथ ही अगर तुम्हारे पास कोई ऐसा तिलस्मी सामान नहीं है, जिससे तुम अपनी रक्षा कर सको तो उधर कदापि पैर न रखो। अगर तुम्हारे पास कोई तिलस्मी हथियार या पोशाक है, तो तुम निर्भय होकर आगे बढ़ सकते हो—केवल थोड़ी-सी सावधानी की जरूरत पड़ सकती है। इस बंगले के उत्तर की ओर जो बड़ा-सा कमरा है उसमें चले

जाना। वह कमरा बड़ा डरावना मालूम देता है और वास्तव में है भी। उसकी दीवालें, छत और फर्श सब काले रंग की हैं जिससे उस कमरे में दिन के समय भी डरावना अन्धकार छाया रहता है। कमरे में घुसते ही तुम देखोगे कि तुम्हारे कानों में तरह-तरह की डरावनी आवाजें आने लगेंगी! तरह-तरह की चिल्लाहट तथा चीख और पैरों की धमधमाहट की आवाज सुनकर तुम डर जाओगे। ऐसा मालूम होगा कि उसी कमरे के अन्दर कितनी ही भयानक घटनायें हो रही हैं, मगर तुम एक भी आदमी की सूरत न देख सकोगे। तुम्हें कुछ भी दिखाई न पड़ेगा। केवल तरह-तरह के भयानक डरावने शब्द तुम सुनोगे। परन्तु इससे जरा भी नहीं डरना। यह तो केवल कुछ मशीनों की आवाजें हैं जो ठीक उस कोठरी के नीचे बैठाई हुई हैं। दक्षिण ओर की दीवाल के पास तुम चले जाना। वहाँ तुम एक यन्त्र देखोगे। उस यन्त्र को बायीं ओर ६ बार और दायीं ओर ६ बार फिर बायीं ओर ३ बार घुमाना। तुरन्त ही दरवाजा दिखाई पड़ेगा और नीचे उतरने की सीढ़ियाँ मिलेंगी। तुम उनकी राह नीचे उतर जाना। मगर खबरदार! यन्त्र घुमाने में कमी-बेशी न करना. नहीं तो उस कोठरी की छत तुम्हारा प्राण ले सकती है...!'

यहाँ तक पढ़कर विजय ने पुस्तक बन्द कर दी और आराम करने लगा। शीघ्र ही उसे नींद आ गई। दो घण्टे बाद जब वह उठा तो उसके बदन में कुछ ताजगी आ गई थी। अब वह उस बँगले के उत्तर वाले कोने में बने हुए कमरे की ओर बढ़ा। उस कमरे का दरवाजा बन्द था। विजय ने चौखटे के पास का कोई यंत्र दबा कर वह दरवाजा खोला और भीतर प्रविष्ट हुआ।

वह कमरा सचमुच भयंकर था। काले रंग से पुती हुई दीवाल बड़ी डरावनी लग रही थी। ज्योंही विजय उस कमरे में घुसा, त्योंही उस कमरे में से विचित्र-विचित्र डरावनी आवाजें आने लगीं। कोई

दर्दनाक आवाज में चीख रहा है, ऐसा मालूम होता था। कभी ऐसा प्रतीत होता था मानों बीसों आदमी उस कमरे में पैर पटक-पटक कर चल रहे हैं, परन्तु विजय को किसी भी जीव की सूरत दिखाई न पड़ती।

यदि तिलस्मी किताब में उस स्थान का जिक्र न होता, तो अवश्य ही विजय डर कर वहाँ से भाग खड़ा होता। परन्तु वह असीम साहसी था और जानता था कि यह सब मशीनों की करामात है, जो ठीक उस कमरे के नीचे बैठाई गई हैं, ताकि यहाँ आने वाले को डरा कर मार डाला जाय। यद्यपि विजय पहले से ही होशियार था, फिर भी एक बार धोखा खा ही गया।

विजय उस भयंकर कमरे में घूमने लगा। कमरे में उस दरवाजे को छोड़कर, जिससे वह वहाँ आया था, चार दरवाजे और थे, जो इस समय बन्द थे। वह पहले दरवाजे के पास गया और उसे ध्यानपूर्वक देखने लगा। उस दरवाजे के ऊपर बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा था—'मृत्युद्वार!' उसके नीचे छोटे-छोटे अक्षरों में और भी कुछ लिखा था वह उसे पढ़ ही रहा था कि उसी समय उस कोठरी के बन्द दरवाजे के अन्दर से किसी स्त्री के चीखने की आवाज आई। वह स्त्री कह रही थी—'कोई मुझे बचाओ यह शैतान मेरी जान लेकर छोड़ेगा। बचाओ। कोई बचाओ मुझे!'

विजय यह आवाज सुनकर विचलित हो उठा। उसी समय उस मृत्युद्वार के दरवाजे अपने आप खुल गये। विजय अपने को सम्हाल न सका और उस विपत्तिग्रस्ता स्त्री को बचाने के लिये भयानक मृत्यु-द्वार में घुस पड़ा!

उसके जाते ही वह दरवाजा अपने आप बन्द हो गया। भीतर जाने पर उसे कुछ भी दिखाई न पड़ा। तब वह चौंका—उफ्! उसने कितनी बड़ी गलती की है। उस स्त्री के चिल्लाने की आवाज

भी उन्हीं मशीनों की बनावटी आवाज थी। अब क्या होगा? उसने उस कोठरी में दृष्टि डाली।

एक ओर दीवाल में बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा था—"मृत्यु-द्वार!—इस कोठरी में २ मिनट से ज्यादा रहनेवाला मौत का शिकार होगा—"

विजय चौंक पड़ा। डर से उसकी बुरी दशा हो गई। उसने चटपट अपनी तिलस्मी पुस्तक निकाली और देखने लगा कि शायद उस पुस्तक में कहीं कोई बाहर निकलने का मार्ग लिखा हो। एक जगह उसे मनोवांछित लिखावट मिल गई।

उस पुस्तक में एक स्थान पर लिखा था "बहुत सम्भव है कि तुम मृत्युद्वार में फँस जाओ। अगर तुम्हें वहाँ आये केवल एक मिनट बीता है तब तो तुम निकल सकते हो। दरवाजे के पास लगी हुई कील को बाहर खींचो।"

लपककर विजय ने उस कील को खींच लिया और दरवाजा खुल गया। खुशी-खुशी वह उस कमरे से बाहर निकलकर पुनः उस डरावने काले कमरे में पहुँच गया। उस कमरे में अभी तक चीखने-चिल्लाने एवं धमधमाहट की आवाजें आ रही थीं। परन्तु वह अब उन पर ध्यान देने वाला न था। वह मृत्युद्वार के बगलवाले दरवाजे पर ध्यानपूर्वक दृष्टि डालने लगा।

वह दरवाजा भी बन्द था। उस पर बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा था—'दानवदेश'। नीचे छोटे-छोटे अक्षरों में लिखा था—"खबरदार! यह दरवाजा न खोलो। यह रास्ता एक भयानक देश को गया है, जिसे 'दानवदेश' कहते हैं। वहाँ जाने पर केवल मृत्यु ही हाथ लगेगी..."

विजय ने मस्तक का पसीना पोंछा, फिर उस बगल वाले दरवाजे को देखने लगा, जिस पर लिखा था–"यह रास्ता भी एक भयानक

भूखण्ड में गया है। इसे खोलने का साहस करना प्राणघातक सिद्ध होगा।'

अब विजय चौथे दरवाजे के पास आया, जिसपर लिखा था—'रक्त-मन्दिर का भयानक भाग और कोषगृह...'

इसी दरवाजे से विजय को आगे बढ़ना था। उसने तिलस्मी किताब के अनुसार पास की दीवार में लगे एक यन्त्र को क्रम से घुमाया—पहले बाईं ओर ६ दफे, तब दाईं ओर ९ दफे और अन्त में बाईं ओर ३ दफे। यन्त्र घुमाते ही धड़ धड़ की आवाज करके वह दरवाजा खुल गया और नीचे उतरने की सीढ़ियाँ दृष्टिगोचर हुईं। वह निर्भीकतापूर्वक सीढ़ियाँ उतर गया।

इस समय उसने अपने को एक ऐसे कमरे में पाया, जिसमें चारों ओर छोटे-बड़े कल-पुर्जे लगे हुए थे और उनसे भयंकर आवाजें निकल रही थीं। विजय समझ गया कि इन्हीं आवाजों को उसने ऊपर वाले काले कमरे में सुना था।

वह उन कल पुर्जों की भयानक आवाजों के मध्य में कई मिनट तक खड़ा होकर आगे की कार्य-प्रणाली पर ध्यान देता रहा। दो मिनट के लिये उसने पुनः वह तिलस्मी किताब निकाली और उसमें न जाने क्या देखा, फिर किताब जेब में रखकर पास की दीवाल में लगे किसी कल को एंठा। कल घुमाते ही सामने की दीवाल में एक दरवाजा पैदा हो गया।

वह उस दरवाजे की राह अन्दर घुसा। एक अन्धेरी सुरंग थी; उसी में से चलने लगा। कुछ दूर जाने पर उसे अँधेरे में कोई चमकती हुई वस्तु दृष्टिगोचर हुई।

वह चमकती हुई वस्तु बहुत भारी थी और उससे सुरंग का पूरा रास्ता छेंका हुआ था। दूर से वह अनुमान न लगा सका कि क्या वस्तु है, परन्तु साहस कर पास जाते ही वह सब कुछ समझ गया। वह एक चमकती हुई पीतल की मूर्ति थी और ठीक वैसे ही गाड़ीदार

चबूतरे पर बैठाई हुई थी, जैसे गाड़ीदार चबूतरे की पीतल की मूर्ति की गोद में बैठकर वह इस चंगदेश में आया था।

विजय को देखते ही वह मूर्ति बोल उठी—"आओ दोस्त! मैं तुम्हारा कब से इन्तजार कर रही हूँ। आओ, मेरे पास आओ, मैं तुम्हें तिलस्म की सैर करा लाऊँ।"

विजय हैरान था, उन तिलस्मी मूर्तियों को ठीक आदमी की तरह बोलते सुनकर। वे मनुष्य कैसे होंगे जिन्होंने उन तिलस्माती खिलौनों की सृष्टि की थी।

वह उस मूर्ति की गोद में जाकर बैठ गया। साथ ही उस चबूतरे में कम्पन हुआ और नीचे से धड़-धड़ की आवाजें आने लगीं। उसने देखा कि वह चबूतरा रेलगाड़ी की तरह तेजी से आगे को दौड़ रहा है।

तीन घण्टे तक वह यात्रा जारी रही और अन्ततोगत्वा एक उद्यान में आकर समाप्त हुई। विजय उतर पड़ा और वह मूर्ति चबूतरे पर बैठी न जाने कहाँ चली गई?

वह एक उद्यान में था जिसके उत्तर और दक्षिण आमने-सामने की ओर मकानों के सिलसिले दृष्टिगोचर हो रहे थे। उन मकानों में बीसों दरवाजे थे, परन्तु सभी बन्द थे। वह उस मनोहारी उद्यान में टहलने लगा। अब तक काफी थक चुका था, फिर भी विश्राम करना नहीं चाहता था।

वह चाहता था कि शीघ्र से शीघ्र 'रक्तमन्दिर' के भेदों का अन्त हो और अपनी जीवन संगिनी राजकुमारी नीरा से विवाह कर सके।

उस तिलस्मी किताब में उसने एक जगह यह लिखा हुआ देखा था—

'जो मनुष्य 'रक्त-मन्दिर' के भयानक भेदों को खोलकर उसके अगम कोष का अधीश्वर होगा, उसी के साथ चंगदेश की

राजकुमारी का विवाह होगा। इसके विपरीत करने पर विपत्ति आयेगी।'

यह पढ़कर विजय अत्यन्त प्रसन्न हुआ था। चंगदेश के महाराज विशाल भी यह जानते थे, परन्तु वे यह नहीं चाहते थे कि कोई विदेशी पुरुष 'रक्तमन्दिर' के अगम कोष का अधीश्वर बनकर उनकी कन्या से विवाह करे।

महाराज विशाल के पूर्वजों ने उन्हें आज्ञा दे रखी थी कि जिस दिन वह दिव्य पुरुष 'रक्त-मन्दिर' का रहस्योद्घाटन करके 'रक्त-मन्दिर' के भयानक तिलस्म से बाहर आ जाय, उसी दिन राजकुमारी नीरा की शादी उससे कर दी जाय।

बड़ी देर तक विजय उस उद्यान में घूमता रहा। एकाएक किसी प्रकार की आवाज सुनकर उसने अपना सर घुमाया। देखा—उत्तर ओर के मकानों के सिलसिले का एक दरवाजा खुल गया है और उसके अन्दर से एक चमचमाता हुआ पीतल का हाथ उसे अपनी ओर बुला रहा है। वह हाथ पीतल का था और बहुत बड़ा था। उस हाथ के अतिरिक्त और कुछ भी दिखाई न पड़ता था। वह हैरान होकर उधर बढ़ा।

इतने में पीछे की ओर से भी कुछ आवाजें आईं, मानों किसी ने उसे पुकारा हो—'हे!'

विजय ने घूमकर पीछे की ओर देखा, तो दक्षिण ओर के मकानों के सिलसिले का भी एक दरवाजा खुला था और उसमें से भी पीतल का एक लम्बा हाथ निकला हुआ उसे अपनी ओर आने का संकेत कर रहा था।

वह आश्चर्यचकित रह गया।

घूमकर दक्षिण की ओर ही बढ़ा, तब तक उत्तर की ओर से आवाज आई 'हे....!'

जब विजय ने उधर देखा, तो किसी आदमी की सूरत न दिखाई

पड़ी। केवल वही पीतल का लम्बा हाथ उसे अपनी ओर आने का संकेत कर रहा था।

जब वह उत्तर की ओर जाने लगा, तो दक्षिण की ओर से आवाज आई—'हे....!'

इसी प्रकार जब वह दक्षिण की ओर जाता, तो उत्तर से कोई पुकारता और जब उत्तर की ओर जाने लगता, तो दक्षिण की ओर से आवाज आती।

वह हैरान हो उठा। न जाने यह कौन-सा तिलस्मी तमाशा है! तमाशा है या किसी वास्तविक घटना का सूत्रपात होने वाला है, कुछ समझ में नहीं आया। अतः लाचार होकर उस अद्भुत तमाशे पर आश्चर्य करता हुआ बीच ही में बैठ गया और अपनी पुस्तक देखने लगा।

कदाचित् वह यह जानना चाहता था कि उस विचित्र तथा भयानक तिलस्मी खिलवाड़ का उस तिलस्मी किताब में कहीं जिक्र है या नहीं।

वास्तव में वह उस तिलस्मी तमाशे को देखकर बहुत हैरान तथा परेशान हो गया था, परन्तु सारी तिलस्मी किताब खोज डालने पर भी अद्भुत तमाशे का कहीं जिक्र ही न आया। वह विषय अन्धकार में ही छोड़ दिया गया था। कहीं भी उस तमाशे का तनिक भी वर्णन न था।

वह चुपचाप बैठा रहा। बड़ी देर के बाद उत्तर की ओर से आवाज आई–"मेरी ओर आइये!"

विजय ने उत्तर की ओर देखा। वह पीतल का हाथ उसे अपनी ओर बुला रहा था, परन्तु बोलने वाले का कहीं पता तक न था। इतने में ही दक्षिण की ओर से आवाज आई–"नहीं! मेरी ओर आइये!–"

विजय ने उधर भी देखा, पीतल का लम्बा हाथ उसको आने का इशारा कर रहा था।

वह क्षुब्ध हो उठा ! उसे क्रोध भी आ गया। उसने निश्चय कर लिया कि अवश्य उस भेद का पता लगायेगा। वह उत्तर की ओर बढ़ा, उसी समय किसी ने दक्षिण की ओर से चिल्लाकर कहा–"उधर नहीं—उधर खतरा है।"

अतः विजय दक्षिण की ओर बढ़ा, तो उत्तर की ओर से किसी ने चिल्लाकर कहा – "उधर नहीं उधर खतरा है।"

वह पुनः रुक गया—किधर जाय, किधर न जाय—अजीब उलझन में जा फँसा। अन्त में उत्तर की ओर ही बढ़ा और उस खुले हुए दरवाजे के नजदीक पहुँचा, तो वह पीतल का हाथ दरवाजे के पीछे घुसकर गायब हो गया। वह भी तेजी के साथ उस खुले हुए दरवाजे में घुस गया। उसके जाते ही दरवाजा बन्द हो गया और एक विकट हँसी सुनाई पड़ी। अन्दर जाने पर विजय को कोई दिखाई न पड़ा। परन्तु उस कोठरी को देखकर वह चौंक पड़ा।

यह वही 'मृत्युद्वार' नामक कोठरी थी, जिसमें वह एक बार पहले भी आ चुका था परन्तु इस बार दूसरे दरवाजे से आया था।

उसने बाहर निकलने के लिए बाहरी दरवाजे का यन्त्र उमेठा, परन्तु कोई नतीजा न हुआ। धीरे-धीरे दो मिनट बीत गये। अब बाहर निकलने का कोई रास्ता न रहा। उसने भय के साथ देखा कि पूर्व और पश्चिम ओर की दीवालें धड़-धड़ शब्द करती हुई, उसकी ओर बढ़ा आ रही हैं।

वह काँप उठा। उफ् ! थोड़ी ही देर में आगे बढ़ती हुई ये दीवालें एक दूसरे से सट जायँगी और उनके बीच में दब कर दुर्दशाजनक मृत्यु को प्राप्त होगा। वह सर पर हाथ रखकर बैठ गया।

दोनों दीवालें उसे ग्रसने के लिए आगे बढ़ी आ रही थीं। वह बाहर निकलने के लिये छटपटा रहा था।

● ●

खंगबहादुर की मृत्यु निकट थी ।

रसिकरसाल ने, उस उजाड़ भूखण्ड में क्षुधा एवं तृष्णा से संतप्त होकर उसे मारने का दृढ़ निश्चय कर लिया था। यही नहीं, उसे मारने के लिए उसने अपना भयानक तमंचा भी तान लिया था।

यद्यपि खंगबहादुर के रोने गिड़गिड़ाने की उसने कुछ भी परवाह न की, परन्तु उसका हृदय मनुष्य की हत्या करके नर मांस से अपनी क्षुधा शान्त करना नहीं चाहता था, जब तक की क्षुधा परितृप्ति का दूसरा प्रसाधन प्रस्तुत हो सके।

परन्तु लाचार था रसिक ! उस विजन में और कोई साधन न था, केवल यही युक्ति थी कि वह खंगबहादुर को मारकर अपनी क्षुधा शान्त कर ले ।

मन में दृढ़ निश्चय करके रसिक ने तमंचे के घोड़े पर अँगुली रखी और चाहता ही था कि उसे दबाकर खंगबहादुर के प्राण का अन्त कर दे कि एक प्रकार की तेज भगदड़ की आवाज सुनकर रुक गया। उसने सामने की ओर देखा । झुण्ड के झुण्ड जानवर भय से व्याकुल होकर उधर ही भागे आ रहे थे। उनके भय का कारण क्या था, यह र सक न जान सका। ऐसा मालूम हो रहा था कि दूर के किसी जंगल में कोई विपत्ति आ गई है और उसी से व्याकुल होकर वे जंगली जन्तु इधर-उधर भाग रहे हैं।

भागने की धुन में उन्हें अपना पराया, मित्र-शत्रु कुछ भी नहीं सूझ रहा था। हिरन और शेर तथा अन्य हिंसक जन्तु एक साथ भागे जा रहे थे। आसन्न भय ने उनकी बुरी हाल कर दी थी- भय के मारे उन्हें अपने शत्रु की भी परवाह न थी।

रसिक का तमंचावाला हाथ, तुरन्त ही उन भागते हुए जानवरों

की ओर घूम गया। उसी समय धायँ की आवाज हुई और सामने से भागता हुआ एक हिरन भूमि पर गिरकर तड़पने लगा।

खंगबहादुर चिल्ला उठे—"खूब किया मित्र !"

अब उन दोनों में रुकने की ताव न थी। दोनों भूखे बाघ हो रहे थे। वे तेजी के साथ उस हिरन की ओर दौड़े और पास जा उसके घावों से बहता हुआ ताजा रक्त पीकर अपनी प्यास बुझाने लगे। मनुष्य की पैशाचिक प्रवृति का वह भयानक दिग्दर्शन था !

इच्छा भर रक्त पी चुकने के बाद वे हिरन के वदन से कच्चा मांस नोचकर खाने लगे। वे न जाने कब तक इस प्रकार अपनी क्षुधा शान्त करने में संलग्न रहते, परन्तु पास ही आग लगने की तीव्र गन्ध ने उन्हें चैतन्य कर दिया।

दोनों ने सामने की ओर देखा तो सन्न रह गये। जङ्गल में भयानक आग लगी हुई थी, जिसकी लपटें आकाश का चुम्बन कर रही थीं।

पचासों कोस तक, जहाँ तक दृष्टि जा रही थी, आग के धुयें से आकाश भरा हुआ था। बड़े-बड़े वृक्ष घास-फूस की तरह उस दावाग्नि में भस्म हो रहे थे।

दोनों ने सुना था, जङ्गल में कभी-कभी अपने आप ही भयानक अग्नि प्रकट हो जाती है, जिससे सैकड़ों कोस का जंगल जलकर राख हो जाता है—आज उन्होंने उस दृश्य को स्वयं अपने नेत्रों द्वारा देख लिया। अब उनकी समझ में उन जानवरों के भागने का कारण आ गया। वे समझ गये कि उसी दावाग्नि के भय से व्याकुल होकर वे हिंसक तथा अहिंसक जन्तु साथ-साथ भागे जा रहे थे।

उस नीम के वन में भी आग लग चुकी थी और विषैला कड़ुवा धुआँ चारों ओर फैल रहा था। उन्हें भी अपने जान के लाले पड़ गये।

यदि वे शीघ्र ही भागकर अपने प्राणों की रक्षा नहीं करते, वह भीषण अग्नि उनके रक्त-माँस एवं अस्थिपञ्जर को जलाकर भस्मसात् कर देगी। अतः वे दोनों भी उसी ओर दौड़ चले जिधर वे जानवर भाग कर गये थे। उसी ऊसर में जाकर उन्हें शरण मिली क्योंकि वहाँ वृक्ष न होने के कारण आग के आने का भय नहीं था।

वे जङ्गली जानवर भी उसी ऊसर में पंक्तिबद्ध खड़े आतुर दृष्टि से उस भस्मप्रायः वन की ओर देख रहे थे। आग तेजी से फैल चुकी थी। भयानक शोर के साथ दानवाकृति वृक्ष भस्म होकर पृथ्वी की गोद भर रहे थे।

दोनों ने अपने तमंचे की सहायता से पुनः दो हिरन मारे और अपनी पूरी क्षुधा शान्त की। बहुत सा मांस बच भी रहा! दो दिन तक वह आग धधकती रही और वे उसी ऊसर में बैठे रहे, इस बीच उन दोनों ने चार हिरन और मारे और उनके माँस अपने साथ ले जाने को रख लिए ताकि भोज्य पदार्थ न मिलने पर उसी पर अवलम्बित रहा जाय।

तीसरे दिन, उसी भस्मसात् जङ्गल के मध्य से वे फिर आगे बढ़े। ज्यों-ज्यों आगे बढ़ते जा रहे थे, त्यों-त्यों राख के ढेर दृष्टि-गोचर हो रहे थे। लगातार पांच दिनों तक उस जले हुए जङ्गल का ओर-छोर न मिला और न तो कहीं किसी प्रकार कि खाद्य सामग्री ही प्राप्त हुई। उन्होंने हिरन का पर्याप्त माँस अपने साथ लेकर बहुत बुद्धिमानी का कार्य किया था—नहीं तो इस बार की यात्रा में भूखे रह कर उन्हें या तो जान दे देनी पड़ती या एक आदमी दूसरे को मारकर खा जाता।

छठें दिन उन्हें अपने सामने एक बहुत ऊँचा लाल रंग का पर्वत दिखाई पड़ा। उसे देखते ही रसिक चिल्ला उठा—"लो मित्र। हम 'गेरूपर्वत' आ पहुँचे। इस पहाड़ के उस पार जाते ही हम दोनों धन-धान्य तथा स्वर्ण से परिपूर्ण 'चङ्गदेश' में पहुँच जायँगे!"

खड्गबहादुर की भी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। आखिर वे नाना प्रकार की यातना सहन करते हुए उस भयानक देश में पहुँच ही गये। सारी थकावट दूर भाग गई और दौड़ते हुए "गेरूपर्वत" के पास जा पहुँचे।

परन्तु उस पर चढ़ना उन्होंने जितना सरल समझा था, उतना ही कठिन प्रतीत हुआ।

यह पर्वत इतना ढालुआँ तथा बलुहा था कि पैर थमते ही न थे दो-तीन बार कुछ दूर तक चढ़कर फिर दोनों नीचे ढुलक पड़े जिससे उनके बदन में लाल गेरू पुत गया। अब उनकी सूरत ही अजब तरह की हो गई थी। फिर भी दिन भर के कठोर परिश्रम के बाद वे उस "गेरूपर्वत" पर चढ़ सकने में समर्थ हो सके चढ़ जाने पर उस पार सरलतापूर्वक ढुलकते हुए उतर गये। अब उन्होंने अपने सामने एक विचित्र देश देखा।

यही था चंगदेश !

दूर से ही सोने के बने हुए अगणित मकान सूर्य की प्रखर आभा में चमचमा रहे थे।

मारे प्रसन्नता के दोनों एक दूसरे से लिपट कर रोने लगे, देर तक रोते रहे। इतना कष्ट सहन करने के पश्चात आज उनकी मनोकामना सफलीभूत हुई थी। परन्तु उन पर आगे कौन-सी भयानक विपत्तियाँ आने वाली हैं, इस पर उन्होंने तनिक भी विचार न किया था। वे तो सुनहले भविष्य की रेखा देखकर मुग्ध हो उठे थे।

अन्त में आगे की कार्य-प्रणाली निर्धारित करने के लिए उन्होंने अपनी तिलस्मी किताब निकाली और पढ़ने लगे।

"इस देश में आकर तुम्हें सबसे पहले अपनी जान की फिक्र करनी पड़ेगी। यहाँ के मूल निवासी विदेशियों के साथ प्राणघातक व्यवहार करते हैं। यहाँ जितने भी विदेशी आये सभी

अपनी गलती से इन भयानक चंग निवासियों के हाथ पड़ गये और 'रक्त-मन्दिर' में नृशंसतापूर्वक उनका बलिदान कर दिया गया है। तुम सावधान रहना और यहाँ के निवासियों से बचकर कार्य करना। यदि तुम इस 'गेरूपर्वत' की थोड़ी-सी मिट्टी लेकर अपने शरीर के अङ्ग-प्रत्यङ्ग पर मल लोगे, तो तुम्हारी आकृति बहुत कुछ यहाँ के मूल निवासियों जैसे हो जायगी, तब तुम उसमें सरलतापूर्वक मिल जा सकोगे। यहाँ से तुम ठीक 'रक्त-मन्दिर' के पास चले जाना। यदि तुम्हारे पास कोई तिलस्मी हथियार या पोशाक नहीं है, तो 'रक्त-मन्दिर' में प्रवेश करने का साहस न करना। 'रक्त-मन्दिर' के दक्षिण कोने पर एक स्वर्ण चबूतरा दिखाई पड़ेगा, उसे तुम्हें अपनी बुद्धि से खोलना पड़ेगा। वही 'रक्त-मन्दिर का "प्रवेशद्वार" है। इसके आगे तुम्हें स्वयं अपनी बुद्धि पर निर्भर रह कार्य करना होगा। सावधान! यह तिलस्म है, बिना बिचारे कोई कार्य न कर बैठना, नहीं तो प्राण संकट में फँस जायगा। इत्यलम्।"

चटपट दोनों ने "गेरूपर्वत" से थोड़ी गेरू लेकर अपने अङ्ग-प्रत्यङ्ग पर मला। वास्तव में उनके रङ्ग-रूप में आश्चर्यजनक परिवर्तन हो गया। अब वे निर्भय होकर आगे बढ़े। हाँ? अपने-अपने तमंचे तैयार रखे, ताकि समय पड़ने पर उन्हें काम में ला सकें।

आगे बढ़ने पर उन्हे चंगदेश के बहुत से निवासी मिले, परन्तु किसी ने भी उन दोनों पर विदेशी होने की शंका न की और वे सकुशल 'रक्त-मन्दिर' के पास जा पहुँचे।

उस समय चंगदेश का सेनापति व्योम वहाँ उपस्थित था। वह बड़ा ही धूर्त एवं चतुर था। उसने इन दोनों को देखा और अपने पास बुलाया।

वे बेधड़क उसके पास चले गये, परन्तु जब उस चंगदेशीय सेना-

पति को ध्यानपूर्वक अपनी ओर देखते पाये, तो समझ गये कि वह उन्हें पहचान गया है।

उसी समय व्योम चिल्ला उठा—"पकड़ो विदेशियों को !"

सैकड़ों की संख्या में चंगनिवासी इन दोनों पर टूट पड़े। परन्तु इन्होंने फुर्ती से अपने-अपने तमंचे निकाल गोलियाँ चला दी। फिर उन लोगों को इन दोनों की ओर बढ़ने का साहस न हुआ। चंगदेश में तमञ्चा एक नई वस्तु थी। यहाँ के निवासियों ने कभी ऐसे शस्त्र की कल्पना तक न की थी।

अब रसिक और खंगबहादुर तेजी के साथ 'रक्त- मन्दिर' की चहारदीवारी लाँघ भीतर जा पहुँचे और उस जगह जाकर खड़े हो गये जहाँ किताब के लेखानुसार सोने का एक ऊँचा चबूतरा था।

जनता अभी तक उन दोनों के गले पड़ी थी। यद्यपि लोगों को उनके पास आने का साहस नहीं हो रहा था, फिर भी चहारदीवारी की आड़ से तीर चला रहे थे।

एकाएक रसिक का हाथ किसी यन्त्र पर जा पड़ा और चबूतरा का एक भाग पल्ले की तरह खुल गया। नीचे उतरने के लिए सीढ़ियाँ दृष्टिगोचर हुईं। दोनों फुर्ती के साथ उसमें उतर गये।

वह दरवाजा अपने आप बन्द हो गया। अब वे एक अनजानी और भयङ्कर जगह में थे। वहाँ से आगे बढ़ने का रास्ता उन्हें स्वयं उत्पन्न करना था। आगे एक बन्द दरवाजा दिखाई पड़ा, जिसे उन्होंने किसी प्रकार खोला। एक सुरंग थी, जिससे दोनों आगे बढ़े। शीघ्र ही वे एक मनोहर उद्यान में पहुँच गये।

बीच में तो बाग लगाया गया था और चारों ओर तरह-तरह के मकान थे—सभी सोने के बने हुए। यहाँ की रमणीयता से उन दोनों का हृदय अत्यन्त प्रसन्न हुआ और वे तरह-तरह के फल खाकर अपनी क्षुधा निवारण करने में निमग्न हो गये।

दोनों नीची दृष्टि किए हुए बातचीत करने में निमग्न थे। किसी ने

नहीं देखा कि पूर्व ओर के मकानों के सिलसिले का एक दरवाजा धीरे से खुला और एक भयंकर मूर्ति ने उस दरवाजे से सर बाहर निकाल उन दोनों की ओर देखा, पुनः गायब हो गई, परन्तु दरवाजा खुला ही रहा।

थोड़ी ही देर बाद पश्चिम ओर मकानों के सिलसिले का भी एक दरवाजा खुला और एक दूसरी भयानक शक्ल ने अपना सर बाहर निकाला।

रसिक और खंगबहादुर में से किसी ने भी इसे न देखा। वे निश्चिन्त होकर बातचीत करने में तल्लीन रहे।

उसी समय पूर्व की ओर से आवाज आई–'हे !' दोनों ने चौंककर उस ओर देखा, तो देखते क्या हैं कि एक द्वार खुला है और उसमें से पीतल का एक लम्बा हाथ निकला हुआ उन्हें अपनी ओर बुला रहा है। दोनों पूर्व की ओर बढ़े। उनके हृदय में इस समय महान कौतूहल हल्लोलित हो रहा था।

उसी समय पश्चिम की ओर से आवाज आई—'हे।' चौंककर दोनों ने फिर पीछे मुड़कर देखा। उधर से भी पीतल का एक लम्बा हाथ बाहर निकला हुआ उन्हें अपनी ओर बुला रहा था।

अब उन्होंने पूर्व जाना छोड़कर पश्चिम की राह ली। जब वे दोनों पश्चिम के दरवाजे के पास पहुँचे, तो देखते क्या हैं कि वह लम्बा हाथ पास आने से मना कर रहा है और उन्हें लौट जाने का इशारा कर रहा है। अब वे पूर्व की ओर चल पड़े, परन्तु पास पहुँचने पर पूर्व वाले हाथ ने भी पास आने से मना कर दिया।

दोनों आश्चर्य एवं विस्मय से पागल हो उठे। पूर्व वाला हाथ जब उन्हें अपने पास बुलावे और वे दोनों जायँ तो पास जाने पर वह न आने का इशारा करे। ऐसा ही पश्चिम की ओर का हाल था।

अन्त में रसिक ने पूर्व की ओर और खंगबहादुर ने पश्चिम की ओर जाने का निश्चय किया। दोनों बढ़ चले। इस बार उन हाथों ने

उन्हें पास आने से नहीं मना किया, वरन् उन दोनों के पास जाते ही कमरे के भीतर घुसकर गायब हो गये ।

रसिक पूर्व के दरवाजे में और खंगबहादुर पश्चिम के दरवाजे में घुस गये । उनके घुसते ही दोनों दरवाजे बन्द हो गये और न जाने कहाँ से एक विकट हँसी सुनाई पड़ी ।



चंगदेश के लोग यद्यपि वीर होते थे, फिर भी डरपोक थे । उनकी वीरता कुछ खास स्थानों तक ही सीमित रहती थी । जब आज उन लोगों ने सुना कि भयानक विदेशी आ पहुँचे हैं, जिनके पास आग उगलने वाले शस्त्र हैं तो वे भय से व्याकुल होकर अपने-अपने घरों में जा छिपे । केवल बहुत आवश्यक कार्य से ही घर के बाहर पैर रखने का साहस करते ।

यह सत्य बात थी कि खंगबहादुर और रसिक के तमञ्चों ने तमाम चङ्गदेश में एक हाहाकारमयी क्रांति तथा भय की सृष्टि कर दी थी । जहाँ देखो वहीं लोग दबी जुबान से डरते हुए उन दोनों भयानक विदेशी आदमियों तथा उनके आग उगलने वाले शस्त्रों ही चर्चा कर रहे थे ।

चङ्गदेश में सेनापति व्योम सबसे अधिक वीर तथा साहसी गिना जाता था । उस देश में कोई ऐसा व्यक्ति न था जो सेनापति व्योम के आगे ठहर कर अपनी वीरता प्रदर्शित कर सके । परन्तु इस समय सेनापति भी उन विदेशियों के भयानक शस्त्रों का आग उगलना देख-कर भय से काँप उठा था । उसका कलेजा धड़क रहा था कि

कहीं वे भयानक आग उगलने वाले शस्त्र उसी पर आग न बरसाने लगें।

उसके सामने इस समय बड़ी ही विकट समस्या थी। यदि वह तनिक भी कायरता प्रकट करता है, तो चंगवासी उसे कायर समझकर घृणा करने लगेंगे और यदि अपनी अकड़ पर अड़ा रहता है, तो अवश्य ही उन विदेशियों के आग उगलने वाले शस्त्रों से तड़प-तड़प कर प्राण देता है।

उधर चारों ओर यह बात भी फैल गई कि वे दोनों विदेशी 'रक्त मन्दिर' के तिलस्म में जा घुसे हैं, यह और भी डर की बात थी। क्योंकि चंगवासी और स्वयं सेनापति व्योम इस बात को मानते थे कि जो व्यक्ति 'रक्त-मन्दिर' के तिलस्म में घुस सकता है, वह मामूली नहीं हो सकता।

व्योम न जाने क्या क्या सोचता हुआ महाराज विशाल के राज-महल की ओर बढ़ा, क्योंकि वह जानता था चंगाधिपति महाराज विशाल तिलस्म के बादशाह कहे जाते हैं। अतः यह आवश्यक समाचार उन तक पहुँचना जरूरी था।

उस समय महाराज विशाल अपनी पुत्री राजकुमारी नीरा के साथ कुछ बात-चीत कर रहे थे कि प्रहरी ने सेनापति व्योम के आने का समाचार सुनाया।

सेनापति क्रूर एवम् व्यभिचारी था, यह सभी जानते थे। अतः कुसमय में उसका आना सुनकर दोनों चिन्तित हुए। राजकुमारी नीरा उठकर अपने महल को चली गई, तब तक मस्तक पर चिन्ता की रेखायें लिये सेनापति भी आ पहुँचा।

उसने और दिनों की भाँति महाराज विशाल के सामने अशिष्टता का व्यवहार नहीं किया—वरन् बड़ी नम्रतापूर्वक उन्हें अभिवादन किया।

महाराज बोले—'क्या है सेनापति ? तुम्हारे मुख पर चिन्ता की

रेखायें क्यों उपस्थित हैं ? ऐसे असमय में मुझे कौन से आवश्यक कार्य से अवगत कराने आये हो ?'

व्योम—'मुझे क्षमा करें महाराज ? कार्य अत्यन्त आवश्यक था—जिससे मैं श्रीमान को समाचार देने के लिये बाध्य हो गया। आज इस चंगनगरी में दो भयानक विदेशियों का आगमन हुआ है। उनके पास आग उगलने वाले मारक शस्त्र हैं। १०० हाथ की दूरी पर खड़े हुए अपने शत्रु को वे सरलतापूर्वक मार सकते हैं। हमें अपने देश की रक्षा का प्रबन्ध कर रखना चाहिये।'

महाराज—'इस समय वे विदेशी कहाँ हैं ?'

व्योम—'वे चबूतरे वाले मार्ग से 'रक्त-मन्दिर' के भीतरी तिलस्म में घुस चुके हैं। मैं तिलस्म में यदि जाने की शक्ति रखता होता, तो अवश्य उन दोनों को पकड़ता। अब तो बस महाराज का ही सहारा है। महाराज ही तिलस्मी मामलों में दखल दे सकते हैं।'

महाराज—'तुमने तो यह बड़ी विचित्र चिन्ता एवम् भय की बात सुनाई सेनापति ? यदि वे विदेशी 'रक्त-मन्दिर' के तिलस्म में घुस चुके हैं, तो समग्र चंगदेश के लिए भय की बात है। आज मुझे अपने पूर्वजों की बातें याद आ रही हैं। तुम भी जानते हो, सैकड़ों हजारों वर्षों से चंगदेश में यह बात प्रचलित है कि 'रक्त-मन्दिर' के कोष पर कभी विदेशियों का अधिकार होगा। क्या वह बात वास्तव में सत्य होगी ?'

व्योम—'मुझे इन कहानियों पर तनिक भी विश्वास नहीं है और न तो प्राचीन ज्योतिष को मैं श्रद्धा की दृष्टि से देखता हूँ। मैं महाराज को बाध्य करने आया हूँ कि वे इन विदेशियों के कार्य-सम्पादन में यथाशक्ति बाधा दें। नहीं तो यदि वे सफलीभूत हो सके और 'रक्त-मन्दिर' के अगम कोष पर उनका अधिकार हो गया, तो हमारा क्या होगा, आपका क्या होगा ? तब आपको बाध्य होकर राजकुमारी नीरा की शादी विदेशियों से करनी पड़ेगी।'

महाराज—'मुझे तुम्हारी बात सुनकर बहुत चिन्ता हो गई है।

आज तक हमने विदेशियों को घृणा की दृष्टि से देखा, अब उनकी आज्ञा कैसे मान सकेंगे ! नहीं ! यह नहीं होगा सेनापति ! हम 'रक्त-मन्दिर' के अगम कोष पर विदेशियों का अधिकार न होने देंगे।'

व्योम—'मैं महाराज की राय से पूर्णतया सहमत हूँ। आज कल चंगदेश विदेशियो की क्रीड़ा-भूमि बना हुआ है। अभी कुछ ही दिन पहले एक विकराल वनमानुष ने स्वयं आपके शयनागार से आपकी तिलस्मी किताब चुरा ली थी। तब से आज तक उसका पता न चला। बहुत दिन पहले से ही 'चंगदेश' में, मुख्य करके राजमहल तथा 'रक्त मन्दिर' में विचित्र घटनाएँ घट रही हैं, जिनकी ओर अब तक हम लोगों का ध्यान नहीं गया था। परन्तु सच पूछिये तो हम लोगों को बहुत पहले ही सावधान हो जाना चाहिये था।'

महाराज—"तुम ठीक कह रहे हो सेनापति ? इसमें अवश्य ही हमारी गहरी असावधानी है। परन्तु अब मैं सावधान हो गया हूँ। इस समय तिलस्म में चल कर उन विदेशियों का पता लगाना चाहता हूँ। तुम निश्चिन्त रहो। मैं तिलस्म का सम्राट हूँ। किसकी मजाल है, बिना मेरी आज्ञा के तिलस्मी कारगुजारी में दखल दे सके। चलो—तुम्हें भी मेरे साथ चलना होगा।'

व्योम -'मैं तैयार हूँ महाराज ? चलिये ! प्राण भले ही चले जायँ परन्तु अपने देश पर तथा पवित्र 'रक्त-मन्दिर' में विदेशियों के पैर न टिकने देंगे।'

महाराज उठकर आलमारी के पास आये और न जाने क्या-क्या निकाल कर अपनी जेब में रखे। फिर सेनापति व्योम को साथ लेकर एक छोटी-सी कोठरी में पहुँचे। वह कोठरी भयानक कल-पुरजों से भरी थी।

महाराज ने उनमें से एक पुरजा घुमा दिया। उस पुरजे को घुमाते ही कोठरी भर में एक अजीब तरह की घर-घर आवाज होने लगी, मानों बहुत से कल-पुरजे चलने लग गये हों। इसके बाद ही

एक तरह की मामूली आवाज हुई और सामने की साफ दीवाल में एक भारी दरवाजा दिखाई पड़ने लगा। आगे-आगे महाराज विशाल और उनके पीछे सेनापति व्योम उस दरवाजे में घुस गये।

उनके अन्दर जाते ही वह दरवाजा और घर्र-घर्र की आवाज बन्द हो गई। महाराज और सेनापति व्योम एक सुरङ्ग में से होकर चलने लगे। वह सुरङ्ग यद्यपि समतल और लम्बी-चौड़ी थी फिर भी अंधकार से पूर्ण थी। कई स्थानों पर तो ये लोग सुरंग की दीवालों से जा टकराये। लगभग ५०० गज चलने के बाद उस सुरंग का अन्त हुआ और ऊपर चढ़ने के लिए सीढ़ियाँ दृष्टिगोचर हुईं।

दोनों आदमी सीढ़ियाँ चढ़ कर एक लम्बे-चौड़े कमरे में जा पहुँचे। उस कमरे में बहुत से विचित्र और भयकारी सामान थे। पूर्व की ओर दीवाल पर चित्रकारी करके एक बहुत बड़ा नक्शा बनाया गया था। उस नक्शे के ऊपर लिखा था—

"रक्त मन्दिर के भीतरी तिलस्म का नक्शा—"

यह नक्शा बहुत साफ एवम् सुन्दर था। नक्शे पर सैकड़ों गुलाब के फूल थे, महाराज इन्हीं फूलों के बीच में कुछ देखने लगे। सब तो मुर्झाये थे परन्तु तीन फूल इस समय खिले थे।

महाराज इसे देखकर चौंक पड़े और बोले—'हैं? दो नहीं तीन आदमी इस समय 'रक्त-मन्दिर' के तिलस्म में घुसे हुए हैं। इनमें से दो आदमी तो साथ-साथ हैं और नम्बर ६ के तिलस्म में हैं मालूम होता है कि ये अभी हाल ही में तिलस्म में घुसे हैं। परन्तु ये दोनों ऐसा जान पड़ता है कि तिलस्म से अधिक जानकारी नहीं रखते, तभी तो भीतरी हिस्से में जाने के बदले बाहर ही बाहर जा रहे हैं....और इधर देखो। यह तीसरा आदमी नम्बर दो के तिलस्म तक पहुँच चुका है। यह तिलस्मी मामलों से जानकार मालूम पड़ता है। तभी तो ऐसे भयंकर जगह पर जा पहुँचा है, जहाँ स्वयं मुझे भी जाने में भय लगता है। अब यह 'रक्त-मन्दिर' के कोषगृह के एकदम निकट पहुँच चुका

है और यदि कोषगृह में आ पहुँचेगा, तो फिर कोई शक्ति उसे बाहर न कर सकेगी। पहले इसी तीसरे आदमी को अपने रास्ते से दूर करना चाहिए ! आओ मेरे साथ !'

तेजी से महाराज ने किसी यन्त्र पर हाथ रखा और पास ही एक छोटा-सा दरवाजा पैदा हो गया। दोनों उसी राह अन्दर चले गये। भीतर एक लम्बी किन्तु रोशनदार सुरंग थी। बीचो-बीच एक छोटी-सी गाड़ी खड़ी थी। नीचे जमीन पर लोहे की लाइनें बिछी हुई थीं, मानों उसी गाड़ी के चलने के लिए वे लाइनें बिछाई गई हैं।

महाराज और सेनापति उसी गाड़ी पर बैठ गये। महाराज ने हाथ बढ़ाकर न जाने क्या किया कि वह छोटी-सी गाड़ी पूरी रफ्तार से घड़-घड़ करती हुई सामने की ओर दौड़ चली। सेनापति व्योम हैरान था, इन तिलस्मी करिश्मों को देखकर—क्योंकि अभी तक उसे कभी भी तिलस्म में आने का सौभाग्य प्राप्त न हुआ था।

बहुत देर तक उनकी यात्रा जारी रही। इस बीच उन दोनों ने न जाने कितने कोस का मार्ग तय कर डाला। अन्त में एक कमरे में जाकर वह गाड़ी रुकी। गाड़ी रुकते ही महाराज और सेनापति उतर पड़े। उनके उतरते ही वह गाड़ी जिधर से आई थी, पुनः उधर ही को लौट गई।

अब महाराज बोले—'देखो ! हम लोग नम्बर दो तिलस्म के एकदम बगल में हैं, जहाँ वह तीसरा आदमी उपस्थित है। अब हम उसे एक विचित्र तमाशे द्वारा "मृत्युद्वार" में फँसाने का प्रयत्न करेंगे।'

इतना कहकर महाराज एक ओर बढ़े। सेनापति भी उनके पीछे चला। किस प्रकार उन्होंने विजयसिंह को पीतल के हाथों वाला तिलस्मी तमाशा दिखाकर दुबारा 'मृत्युद्वार' में कैद कर दिया—यह पाठक पिछले परिच्छेद में पढ़ चुके होंगे।

अब तो आप भली प्रकार समझ गये होंगे कि वह विचित्र तिलस्मी तमाशा दिखाने वाले महाराज विशाल ही थे।

विजय जब उस विचित्र तमाशे से मृत्युद्वार में कैद हो गया, तो महाराज बोले—'चलो अब उन दोनों आदमियों की खबर लें, जो नम्बर ९ के तिलस्म में हैं। सबसे भयानक जो कार्य था, वह तो हो ही गया। अब वह मृत्युद्वार में भयानक दीवालों के बीच दबकर मर जायगा। जब हम दुबारा यहाँ आवेंगे, उसका निर्जीव शरीर यहाँ देखेंगे।

भयानक तिलस्मी रास्ते से होते हुए महाराज विशाल और सेनापति व्योम नम्बर ९ के तिलस्म में आये। उन्होंने खंगबहादुर और रसिक को भी वही पीतल के हाथों वाला तिलस्मी तमाशा दिखाकर कैद कर लिया। यह घटना विस्तारपूर्वक पाठक पिछले परिच्छेद में पढ़ चुके हैं।

इधर से निश्चिन्त होकर महाराज बोले—'अब सब ठीक हो चुका है। इन दोनों अपराधियों को रात भर यहीं रहने दिया जाय। प्रातः-काल इनके दण्ड की व्यवस्था की जायगी। चलो, एक बार फिर नम्बर दो के तिलस्म में चलकर उस आदमी की दशा देखी जाय, जो इतना बड़ा साहस करके 'रक्त-मन्दिर' के कोषगृह के पास तक पहुँच चुका है।'

उन्हीं मार्गों से होते हुए जिस समय महाराज और सेनापति तिलस्म नम्बर दो में आये, मृत्युद्वार सूना पड़ा था। वहाँ कोई न था। महाराज ने जोरों से अपना माथा ठोंका और बोले—'उफ्! वह शैतान फँसकर फिर निकल गया। मालूम होता है तिलस्मी मामलों में वह मुझसे भी अधिक जानकार है। अब क्या होगा?.... बोलो सेनापति! अब क्या होगा? वह विदेशी 'रक्त-मन्दिर' के कोष-गृह में पहुँच गया। हम वहाँ जा भी नहीं सकते क्योंकि वहाँ जाने का रास्ता ही मुझे नहीं मालूम है। उफ्! जिस 'रक्त-मन्दिर' के कोष

को चंगराजकुल ने कभी आँखों से नहीं देखा, आज एक विदेशी उसका मालिक होगा ? चलो, भागो, अब खैर नहीं है ।'

कहते-कहते महाराज बेतहाशा वहाँ से भागे। उसी समय एक भयंकर दन्नाटे की अवाज हुई, मानों कहीं बीसों तोपें एक साथ दगी हों



विजय जानता था कि तिलस्म में आकर एक छोटी-सी गलती से भी मनुष्य की जान जा सकती है। फिर भी 'रक्त-मन्दिर' के तिलस्म में आकर एक मामूली-सी गलतो कर ही बैठा। फल यह हुआ कि वह मृत्युद्वार नामक भयानक स्थान में पुनः जा फँसा।

यद्यपि - से फंसाने में चंगदेश के महाराज विशाल का हाथ था फिर भी यदि वह सावधान रहता, तो उनके चकमे में कभी न फँसता।

विजय ने जब उस तिलस्मी दीवाल को अपनी ओर आते देखा, अपने जीवन से एकदम निराश हो गया।

वह समझ गया कि इन्हीं भयानक दीवालों के बीच दबकर, तड़प-तड़प कर प्राण त्याग करना होगा।

अब तक वे दीवालें विजय के एकदम निकट पहुँच चुकी थीं। वह कांप उठा। उसने एक बार परमात्मा का, पुनः अपनी माता का स्मरण किया, तत्पश्चात् मृत्यु का स्वागत करने को प्रस्तुत हो गया।

दोनों दीवालें धीरे-धीरे आगे बढ़ती हुई एकाएक आपस में जा सटीं उनके बीच एक ज्वाला-सी उत्पन्न हुई—और आश्चर्य के साथ विजय नें देखा बिना उसे कुछ नुकसान पहुँचाये पुनः वापस लौटी जा रहीं हैं।

वह आश्चर्यचकित हो उठा, परन्तु अपने स्थान पर ही बैठा रहा।

कुछ दूर जाकर वे दीवालें पुनः पलट पड़ी और उसकी ओर आने लगीं, परन्तु इस बार भी वे उसके एकदम निकट आकर, बिना उसे किसी प्रकार का नुकसान पहुँचाये ही चली गईं। ऐसा कई बार हुआ।

अब वह समझ गया, किसी कारण से वे दीवालें उसे नुकशान पहुँचाने में असमर्थ हैं। ध्यानपूर्वक सोचने लगा। शीघ्र ही इसका कारण भी उसकी समझ में आ गया। उसके शरीर पर इस समय बनमानुष की तिलस्मी पोशाक थी और कोई भी शक्ति उस तिलस्मी पोशाक का कुछ बिगाड़ नहीं सकती थी।

अब उसे अपने प्राणों का भय नहीं रहा। वह उठकर खड़ा हो गया और इस बात पर विचार करने लगा कि उस भयंकर मृत्युद्वार से बाहर निकलने का कोई रास्ता है भी या नहीं ? उसे पूर्व की ओर की दीवाल में लगे हुए दो पीतल के चुल्ले नजर आये। वह कौतूहल के साथ उन चुल्लों को पकड़कर लटक गया। उसके लटकते ही एक मामूली खटके की आवाज हुई और वह दीवाल शीघ्रता से अपनी जगह पर घूम गई। विजय भी उसके साथ घूमकर दूसरी ओर हो गया।

अब वह उस भयानक मृत्युद्वार से बाहर निकल आया। उसे तनिक भी विश्वास न था कि उस संकटापन्न परिस्थिति से इतनी सरलतापूर्वक स्वतन्त्र हो जायगा। अब उसने अपने को एक सजे हुए विस्तृत कमरे में खड़ा पाया। वह कमरा हीरे, मोतियों तथा मणि-माणक्य से देदीप्यमान हो रहा था।

वह वहाँ की अतुल सम्पदा का अवलोकन करके आश्चर्यचकित हुए बिना न रहा। उस बड़े से कमरे में केवल एक दरवाजा था, जो इस समय बन्द था। उस दरवाजे के ऊपर एक सोने की तख्ती लगी थी, जिसपर बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा था—

तिलस्म नम्बर एक+'रक्तमन्दिर' का कोषगृह—

विजय अत्यन्त प्रसन्न हुआ कि वह काम वाली जगह पर आ पहुँचा है। वह लपककर उस दरवाजे के पास पहुँचा।

दरवाजे के पास पहुँचते ही एक खटके की आवाज हुई और दरवाजा अपने आप खुल गया। वह आनन्दित होकर भीतर चला गया। एक बहुत लम्बी परन्तु रोशनदार सुरंग थी, जिसकी राह चलकर वह शीघ्र ही एक हरे-भरे उद्यान में पहुँच गया। वह एक आश्चर्य-जनक उद्यान था।

वहाँ की जमीन सोने की थी। जगह-जगह कङ्कड़-पत्थरों के बदले हीरे मोती के बड़े-बड़े टुकड़े सावधानी पूर्वक पड़े थे। वहाँ के वृक्ष सोने के थे, जिनमें मणि-माणिक्य के फूल एवं फल लगे थे और न जाने किस तिलस्मी कारगुजारी के कारण सजीव वृक्षों की तरह हिल रहे थे। जगह-जगह पेड़ों पर सोने के तोते तथा अन्य पक्षी फुदकते और अपनी मीठी बोली में बोल भी रहे थे।

विजय हैरान था। उन निर्जीव पदार्थों में भला किस प्रकार जीव की सृष्टि कर दी गई थी। वे महापुरुष धन्य थे, जिन्होंने वह अजूबा तिलस्म तथा वह अनूठा उद्यान बनाया था।

उद्यान के बीचो-बीच एक बड़ा-सा तालाब था। वह तालाब पानी से नहीं, वरन् लबालब श्वेत दूध से भरा था और चारों ओर स्वर्ण-घाट बने हुए थे। हीरे-मोती, पन्नों से जड़ी हुई लम्बी-चौड़ी सीढ़ियाँ थीं। दक्षिण ओर सोने का एक बारहसिंगा तालाब में पानी पीता हुआ बनाया गया था। जब विजय उसके पास पहुँचा, वह इस प्रकार सिर उठाते हुए भाग खड़ा हुआ, मानों कोई असली जानवर हो।

विजय आश्चर्यचकित था, उन अनूठी तिलस्मी कारीगरियों को देखकर। वह जिधर दृष्टि उठाता घंटों तक ताकता ही रह जाता था! अन्त में उसकी दृष्टि सोने के बने हुए उस चमचमाते बँगले पर पड़ी जो उस अनूठे बाग के मध्य में बना था।

विजय उधर ही बढ़ा। उस बँगले के प्रवेशद्वार पर दो सन्तरी टहल-टहल कर पहरा दे रहे थे। उनके कन्धों पर बड़ी-बड़ी नंगी तलवारें भी दिखाई पड़ रही थीं। परन्तु ध्यानपूर्वक देखने पर मालूम हुआ कि वे सन्तरी वास्तव में मनुष्य न थे वरन् तिलस्मी मूर्ति थे, जो सोने के बने हुए थे। मामूली मनुष्यों की तरह आसानी और लापरवाही से घूम फिर रहे थे।

विजय जाकर उनके सामने खड़ा हो गया। उसके खड़े होते ही उन सन्तरियों ने चौंककर उसको ओर देखा, पुनः तलवार कन्धे से उतार कर अदब के साथ सलाम किया और चुपचाप एक बगल हटकर खड़े हो गये। उनका यह भाव ऐसा था, मानो वे विजय को बहुत पहले से जानते हों और वह ही उनका मालिक हो।

विजय जो कुछ भी वहाँ देख रहा था, उससे वह हैरान व परेशान था। उसके आश्चय का उस समय तो और भी ठिकाना न रहा जब कि सामने का प्रवेशद्वार धीरे से अपने आप खुल गया और भीतर से किसी ने जनानी आवाज में कहा—'महाराज ! आइये, पधारिये !'—

वह अपने सामने एक स्त्री मूर्ति देखकर चौंक पड़ा वह मूर्ति हूब-हू राजकुमारी नीरा के आकार की थी, परन्तु सोने की बनी थी।

स्त्री मूर्ति पुनः बोली 'धन्य भाग्य हमारे, जो महाराज के दर्शन मिले। हजारों वर्षों से आपकी ही प्रतीक्षा में जीवन व्यतीत करती आ रही थी। आज नेत्र सफल हुए आइये—भीतर पधारिये !'

उसने विजय को सम्मानपूर्वक लाकर एक स्वर्ण-सिंहासन पर बैठा दिया और दरवाजे के बाहर पुकार कर किसी से कहने लगी—'सुनो ! आज महाराज आये हैं। खूब उत्सव हो और १०१ तोपों की सलामी दागी जाय।'

विजय ने अपनी तिलस्मी किताब निकाली और देखने लगा सबके अन्त में लिखा था—'कोषगृह में आकर तुम्हें बहुत-सी

आश्चर्यजनक वस्तुएँ दिखाई पड़ेंगी। आदमियों की तरह बोलने-चालनेवाली तिलस्मी मूर्तियाँ मिलेंगी। वे सब तुम्हें कुछ भी हानि न पहुँचावेंगी। वे केवल तुम्हारे मनोरंजन के लिए हैं। वे तुम्हारा यथोचित आदर भी करेंगी, क्योंकि अब तुम 'रक्त-मन्दिर' के अगम कोष के एकमात्र अधीश्वर हो।'

पाँच मिनट बाद पास ही कहीं से गड़गड़ाहट सुनाई पड़ने लगी, और मिनट-मिनट पर तोपें दगने लगीं।

इन्हीं तोपों की दनादट महाराज विशाल और सेनापति व्योम ने सुना था और डरकर तिलस्म से बाहर भागे थे।

विजय का वहाँ बहुत स्वागत हुआ। उसने वहाँ पर अतुल सम्पदा का कोष देखा। उस विचित्र बँगले के हर कमरे में बड़े-बड़े हीरे जवाहरात के ढेर के ढेर उपस्थित थे! वह उस खजाने को देखकर पागल नहीं हो गया, यही आश्चर्य था।

चंगदेश-वासियों में और भी विकट सनसनी फैल गई, जब जमीन के अन्दर से तोपों की गड़गड़ाहट सुनाई पड़ने लगी। समूची रात भर, तोपों की आवाजें होती रहीं।

उस रात चंगनिवासी सो नहीं सके। मारे भय एवं आशंका के ईश्वर का नाम लेते हुए अपने-अपने मकान में पड़े थे।

महाराज विशाल और सेनापति व्योम भी घबड़ा उठे और राजमहल में बैठे हुए आपस मे इसी समस्या पर विचारविमर्श कर रहे थे।

महाराज कह रहे थे—'अब हमें निराश हो जाना पड़ा। मालूम हो गया कि इस सुन्दर चंगदेश पर विदेशियों का शासन होगा, तभी तो इधर अनहोनी घटनाएँ घटित हो रही हैं। पूर्व पुरुषों का कथन एकदम सत्य था। वह तीसरा आदमी अवश्य ही 'रक्त-मन्दिर' के कोषगृह में जा पहुँचा है और इस समय वहीं से यह गड़गड़ाहट की आवाज आ रही है। हे ईश्वर! क्या होगा?'

विजय उधर ही बढ़ा। उस बँगले के प्रवेशद्वार पर दो सन्तरी टहल-टहल कर पहरा दे रहे थे। उनके कन्धों पर बड़ी-बड़ी नंगी तलवारें भी दिखाई पड़ रही थीं। परन्तु ध्यानपूर्वक देखने पर मालूम हुआ कि वे सन्तरी वास्तव में मनुष्य न थे वरन् तिलस्मी मूर्ति थे, जो सोने के बने हुए थे। मामूली मनुष्यों की तरह आसानी और लापरवाही से घूम फिर रहे थे।

विजय जाकर उनके सामने खड़ा हो गया। उसके खड़े होते ही उन सन्तरियों ने चौंककर उसकी ओर देखा, पुनः तलवार कन्धे से उतार कर अदब के साथ सलाम किया और चुपचाप एक बगल हटकर खड़े हो गये। उनका यह भाव ऐसा था, मानो वे विजय को बहुत पहले से जानते हों और वह ही उनका मालिक हो।

विजय जो कुछ भी वहाँ देख रहा था, उससे वह हैरान व परेशान था। उसके आश्चर्य का उस समय तो और भी ठिकाना न रहा जब कि सामने का प्रवेशद्वार धीरे से अपने आप खुल गया और भीतर से किसी ने जनानी आवाज में कहा—'महाराज ? आइये, पधारिये !'—

वह अपने सामने एक स्त्री मूर्ति देखकर चौंक पड़ा वह मूर्ति हूब-हू राजकुमारी नीरा के आकार की थी, परन्तु सोने की बनी थी।

स्त्री मूर्ति पुनः बोली 'धन्य भाग्य हमारे, जो महाराज के दर्शन मिले। हजारों वर्षों से आपकी ही प्रतीक्षा में जीवन व्यतीत करती आ रही थी। आज नेत्र सफल हुए आइये—भीतर पधारिये !'

उसने विजय को सम्मानपूर्वक लाकर एक स्वर्ण-सिंहासन पर बैठा दिया और दरवाजे के बाहर पुकार कर किसी से कहने लगी—'सुनो ! आज महाराज आये हैं। खूब उत्सव हो और १०१ तोपों की सलामी दागी जाय।'

विजय ने अपनी तिलस्मी किताब निकाली और देखने लगा सबके अन्त में लिखा था—'कोषगृह में आकर तुम्हें बहुत-सी

आश्चर्यजनक वस्तुएँ दिखाई पड़ेंगी। आदमियों की तरह बोलने-चालनेवाली तिलस्मी मूर्तियाँ मिलेंगी। वे सब तुम्हें कुछ भी हानि न पहुँचावेंगी। वे केवल तुम्हारे मनोरंजन के लिए हैं। वे तुम्हारा यथोचित आदर भी करेंगी, क्योंकि अब तुम 'रक्त-मन्दिर' के अगम कोष के एकमात्र अधीश्वर हो।'

पाँच मिनट बाद पास ही कहीं से गड़गड़ाहट सुनाई पड़ने लगी, और मिनट-मिनट पर तोपें दगने लगीं।

इन्हीं तोपों की दनाहट महाराज विशाल और सेनापति व्योम ने सुना था और डरकर तिलस्म से बाहर भागे थे।

विजय का वहाँ बहुत स्वागत हुआ। उसने वहाँ पर अतुल सम्पदा का कोष देखा। उस विचित्र बँगले के हर कमरे में बड़े-बड़े हीरे जवाहरात के ढेर के ढेर उपस्थित थे! वह उस खजाने को देखकर पागल नहीं हो गया, यही आश्चर्य था।

चंगदेश-वासियों में और भी विकट सनसनी फैल गई, जब जमीन के अन्दर से तोपों की गड़गड़ाहट सुनाई पड़ने लगी। समूची रात भर, तोपों की आवाजें होती रहीं।

उस रात चंगनिवासी सो नहीं सके। मारे भय एवं आशंका के ईश्वर का नाम लेते हुए अपने-अपने मकान में पड़े थे।

महाराज विशाल और सेनापति व्योम भी घबड़ा उठे और राजमहल में बैठे हुए आपस में इसी समस्या पर विचारविमर्श कर रहे थे।

महाराज कह रहे थे—'अब हमें निराश हो जाना पड़ा। मालूम हो गया कि इस सुन्दर चंगदेश पर विदेशियों का शासन होगा, तभी तो इधर अनहोनी घटनाएँ घटित हो रही हैं। पूर्व पुरुषों का कथन एकदम सत्य था। वह तीसरा आदमी अवश्य ही 'रक्त-मन्दिर' के कोषगृह में जा पहुँचा है और इस समय वहीं से यह गड़गड़ाहट की आवाज आ रही है। हे ईश्वर! क्या होगा?'

व्योम—"आप घबड़ायें नहीं महाराज ! राजकुमारी नीरा की रक्षा मैं करूँगा। किसकी मजाल है कि मेरे रहते राजकुमारी पर हाथ लगा सके। आप राजकुमारी का हाथ मेरे हाथ में दे दें !'

महाराज—'चुप रह कापुरुष ! एक मामूली वंश में जन्म लेकर चंग राजकुल की बराबरी करना चाहता है ? जा, चला जा, नहीं तो जबान खींच लूँगा तेरी।'

व्योम - "किस बूते पर आप ऐसी बातें कह रहे हैं महाराज ? आपको सेनापति व्योम के हस्तकौशल की खबर है। इस समय राज्य की सारी सेना मेरे हाथों में है। आपके पास केवल थोड़े से अङ्गरक्षक हैं—वे क्या कर सकेंगे !'

महाराज—'चले जाओ – तुम अभी चले जाओ—नहीं तो ठीक नहीं होगा।'

सेनापति व्योम उठता हुआ बोला—'देखिये महाराज, अगर कल प्रातःकाल तक राजकुमारी नीरा मेरे मकान पर न पहुँचा दी गई तो मैं अपनी समग्र सेना लेकर राजमहल और 'रक्त-मन्दिर' पर धावा कर दूँगा, फिर देखूँगा आपकी कौन रक्षा करता है।'

बड़बड़ाता हुआ व्योम चला गया। महाराज राजकुमारी नीरा के पास आये। राजकुमारी ने पिता के मुँह पर चिन्ता की रेखायें देख कर पूछा—'आप उद्विग्न क्यों हैं पिताजी ?'

महाराज—'बात बड़ी भयानक हो गई है बेटी ! इधर कोई विदेशी रक्त-मन्दिर के तिलस्म में घुसकर उथल-पुथल मचा रखा है। उधर दो और विदेशी तिलस्म में पकड़ गये हैं। कल दरबार में उनका फैसला होगा।....'

सुनकर राजकुमारी अजीब पशोपेश में पड़ गई। अब तक उसे अपने प्यारे विजय का कुछ पता नहीं मिल सका था, इसलिए वह निराश हो चुकी थी। यदि उसे पता होता कि महाराज के कमरे से वह तिलस्मी किताब लेकर भागने वाला वनमानुष और कोई नहीं,

विजय ही था—तो उसकी प्रसन्नता का कोई ठिकाना न रहता। परन्तु दुर्भाग्य वह इस भेद से अनभिज्ञ थी।

महाराज पुनः बोले 'आज सेनापति व्योम मुझे धमकी दे गया है कि यदि रात भर के अन्दर ही तुम्हें उसके मकान पर न भेज दूँ तो प्रातःकाल वह राजमहल पर चढ़ाई करके तुम्हें बलपूर्वक उठा ले जायगा और मुझे मारकर स्वयं ही चंगाधिपति बन बैठेगा। अब इसका कोई उपाय मेरी समझ में नहीं आता। तुम जानती ही हो कि वह कितना क्रूर एवं कठोर हृदयवाला है।'

राजकुमारी अपनी विपत्ति का हाल सुनकर रोने लगी।



खड्गबहादुर और रसिक ने उस तिलस्मी चक्कर में फँसकर बहुत परेशानी उठाई। दोनों का साथ छूट गया। रसिक पूर्व की तथा खड्गबहादुर पश्चिम की कोठरी में बन्द हो गये।

रसिक पूर्व के कमरे की ओर गया था। ज्योंही वह उस कमरे में घुसा दरवाजे को बन्द होता देख उसका माथा ठनका।

वह समझ गया कि अवश्य ही किसी तिलस्मी कारीगरी में फँस गया है। हो सकता है कि खड्गबहादुर भी फँस गये हों। इन्हीं सब बातों पर विचार करता हुआ रसिक उस कमरे में इधर-उधर टहलने तथा बाहर निकलने का साधन खोजने लगा। परन्तु उसे निराश ही हाथ लगी। अन्त में सर पर हाथ रखकर बैठ गया और कुछ सोचने लगा।

कुछ ही देर बाद कहीं से भयानक तोपों की गड़गड़ाहट आनी प्रारम्भ हो गई। रसिक ने भय के साथ देखा, कोठरी की दीवालें, जमीन, यहाँ तक कि हर एक हिस्सा धीरे-धीरे गर्म होता जा रहा था।

रसिक को थोड़ी देर में बेचैनी मालूम पड़ने लगो। धीरे धीरे यह बेचैनी बहुत बढ़ गई। धातु की बनी हुई कोठरी अब तवे-सी जलने लगी थी और गर्मी से व्याकुल होकर वह इधर-उधर दौड़ता हुआ छटपटा रहा था।

ठीक यही हाल पश्चिम ओर की कोठरी में बन्द खंगबहादुर का भी था। वह कोठरी भी तवे-सी जल रही थी!

अन्त में वे दोनों असह्य गर्मी से व्याकुल हुए चेतनाहीन हो भूमि पर गिर पड़े।

जाने कब तक बेहोश रहे यह उन्हें पता नहीं, परन्तु जब चेतना-शक्ति वापस लौटी, दोनों ने एक दूसरे को एकदम पास पाया। दोनों मित्रों को एक दूसरे को देखकर अतीव प्रसन्नता हुई—परन्तु उससे बढ़कर आश्चर्य हुआ उस स्थान को देखकर, जहाँ वे इस समय उपस्थित थे।

वह एक लम्बा-चौड़ा कमरा था। सोने, हीरे तथा मोतियों द्वारा मनोहर चित्रकारी दीवालों पर की गई थी। सामने एक सिंहासन था, जिसपर महाराज विशाल एवं राजकुमारी नीरा बैठे हुये थे।

महाराज ने राजकुमारी से कहा—"यही वे विदेशी हैं, जो कल नम्बर ९ के तिलस्म में पकड़े गये हैं बेटी!"

राजकुमारी ने सर हिलाया और अपने मादक नेत्रों से खंगबहादुर और रसिक की ओर देखा।

कामुक रसिक को ऐसा लगा कि यदि उसके हाथ खुले होते तो उसी समय दौड़कर राजकुमारी को बलपूर्वक अपनी छाती से लगा लेता।

राजकुमारी नीरा का सौन्दर्य चन्द्रमा-सा स्निग्ध, शीतल एवं शांत न था, वरन् था मदिरा-सा मादक एवम् हलाहल-सा तीव्र। उसकी सूरत देखते ही उस सौन्दर्य का उपभोग करने की तीव्र लालसा उत्पन्न हो जाती थी।

महाराज बोले 'तुम लोगों ने 'रक्त-मन्दिर' के तिलस्म में घुसने की चेष्टा की यह अपराध अक्षम्य है।'

रसिक ने निर्भीकतापूर्वक पूछा—'महाराज के देश में ऐसे अक्षम्य अपराध का क्या दण्ड-विधान है !'

महाराज—'प्राण दण्ड ! समझे ! 'रक्त-मन्दिर' में महाकाल की मूर्ति के सामने तुम्हारी बलि दी जायगी। तुम्हारे कटे हुए सर से रक्त की धार बहकर रक्त-कुण्ड में एकत्रित होगी और इसी प्रकार एक दिन वह रक्त-कुण्ड लबालब रक्त से पुनः भर जायगा, जैसा कुछ दिन पहले था !'

उसी समय घबड़ाये हुए प्रहरी ने प्रवेश किया और बोला—"महाराज ! गजब हो गया। सेनापति व्योम ने अपनी सारी सेना लेकर राजमहल एवं 'रक्त-मन्दिर' को घेर लिया है। फाटक पर केवल थोड़े से रक्षक उसकी अपार सेना का सामना कर रहे हैं।"

महाराज विशाल यह समाचार सुनकर चौंक पड़े। राजमहल के फाटक से बराबर मार-काट की आवाजें आ रही थीं। वहाँ खूब घमासान युद्ध हो रहा था। राजमहल के रक्षक बहुत थोड़ी संख्या में थे—अतः सेनापति व्योम के सैनिक विजयी होकर आगे बढ़ते आ रहे थे।

एकाएक महाराज बोल उठे—'अब हमारी रक्षा का केवल एक उपाय है। यदि ये विदेशी हमारी सहायता करें तो हम बच सकते हैं मैंने सुना है कि इनके पास आग उगलने वाले अस्त्र हैं। क्यों विदेशी ! हमारी सहायता कर सकते हो ? हम तुम्हें प्राणभिक्षा दे देंगे।'

रसिक और खंगबहादुर कुछ देर तक एक-दूसरे की तरफ देखते रहे, फिर बोले—'हम तैयार हैं।'

बस फिर क्या था; तुरन्त ही उनके बन्धन खोल दिये गये और उनके तमंचे, जो छीन लिये थे, वापस दे दिये गये।

रसिक और खंगबहादुर अपने-अपने तमंचे लेकर उस ओर दौड़

पड़े, जिधर व्योम की सेना मार-काट मचा रही थी। सेनापति व्योम घोड़े पर चढ़ा अपनी सेना को उत्साहित कर रहा था। रसिक ने तमंचा साधा और धायँ की आवाज हुई।

शत्रु सेना में भगदड़ मच गई। व्योम का घोड़ा घायल होकर भूमि पर गिर पड़ा, परन्तु होशियार व्योम सँभल गया और तुरन्त जान बचाकर भागा। वह समझ गया था कि इन आग उगलने वाले अस्त्रों के आगे उसकी सारी वीरता तुच्छ एवं निष्फल है।

रसिक यदि चाहता तो अपने तमंचे द्वारा सरलतापूर्वक व्योम को मार डालता, परन्तु उसने ऐसा नहीं किया—शायद उसने सेनापति व्योम से कोई भारी कार्य करा लेने का रास्ता सोच लिया था

थोड़ी ही देर की लड़ाई के बाद व्योम की सेना भाग खड़ी हुई और आज की लड़ाई में महाराज विशाल की विजय हुई।

अब तो इन विदेशियों का राजमहल में खूब आदर-सत्कार हुआ।

× × ×

अर्धरात्रि का समय था। राजकुमारी नीरा अपने शयनागार में आराम की नींद सो रही थी। उसके बदन पर अधिक वस्त्र न थे। साड़ी इधर-उधर सरक गई थी। राजकुमारी का अनुपम सौन्दर्य देदीप्यमान हो उठा था। उभरी हुई छातियाँ ऐसी लग रही थीं, मानो शराब के दो प्याले औंधाकर रख दिये गये हों। गले का हार खुली हुई नग्न छातियों पर खेल रहा था। श्वाँस के साथ सुपुष्ट वक्षस्थल उठ-बैठ रहे थे। कमरे में मद्धिम प्रकाश हो रहा था।

एकाएक हवा का एक झोंका आया और प्रकाश बुझ गया। कमरे में सूची-भेद्य अन्धकार छा गया। उसी अन्धकार में दो आदमियों की धीरे-धीरे बातचीत करने की फुसफुसाहट सुनाई पड़ी, परन्तु राजकुमारी को इसकी तनिक भी खबर न थी।

एकाएक मामूली-सी आवाज हुई, राजकुमारी की निद्रा खुल गई। अपने कमरे में अन्धकार देखकर उसे महान आश्चर्य हुआ।

अभी इस बात पर विचार कर रही थी कि ऐसा मालूम हुआ, दरवाजे की ओर से कोई आदमी उसकी चारपाई की ओर बढ़ा आ रहा है।

राजकुमारी ने आँखें गड़ा कर देखा। दो आदमी थे—एक दरवाजे के पास खड़ा था और दूसरा उसकी ओर बढ़ा आ रहा था।

वह भय से विह्वल हो उठी। उसने चिल्लाना चाहा, परन्तु गले से आवाज ही न निकली। उसी समय वह आदमी चारपाई के पास पहुँच गया। राजकुमारी के मुँह से आवाज नहीं निकल रही थी। वह आदमी राजकुमारी की चारपाई पर धीरे से बैठ गया।

राजकुमारी ने ज्योंही चिल्लाना चाहा उस आदमी ने उसकी नाक पर न जाने कौन सी तीव्र गंध वाली वस्तु रख दी। वह चिल्ला भी न सकी और बेहोश हो गई। उस आदमी ने बेहोश राजकुमारी को पलंग पर लिटा दिया।

उसी समय दरवाजे पर के आदमी ने धीरे से कहा—"कहीं से खटके की आवाज आई है। चलो—इसे उठा कर ले चलें सेनापति व्योम इसे पाकर अत्यन्त प्रसन्न होगा और हमारा कार्य भी कर देगा।

उस आदमी ने राजकुमारी के बेहोश शरीर को किसी कपड़े में लपेटा, पुनः कंधे पर उठाकर दरवाजे के पास आया।

तत्पश्चात् वे दोनों आदमी बेहोश राजकुमारी को लिए हुए न जाने किधर चले गये।

× × ×

उस दिन, जब रसिक और खंगबहादुर ने अपने तमंचों की सहायता से सेनापति व्योम को सेना को पराजित कर दिया था, राजमहल में उनका खूब आदर-सत्कार हुआ।

दोपहर को वे राजमहल के एक आरामदायक कमरे में लेटे हुये थे। पास में कोई न था। रसिक ने कहा—'हमने महाराज विशाल की सहायता करके अच्छा काम नहीं किया। मान लिया जाय कि इससे

हमारी जान बच जायगी, मगर कुछ लाभ न हो सकेगा। हमें अब से भी सम्हल जाना चाहिये।'

खंगबहादुर—'तुम्हारा मतलब क्या है ? साफ-साफ कहो तो मेरी समझ में आवे। पहेली बुझाने से क्या लाभ !'

रसिक—'देखिये ? सेनापति व्योम की सहायता करने से हमारी आशा पूर्ण हो जायगी, अर्थात् यदि हम उसकी सहायता करेंगे तो वह भी 'रक्त-मन्दिर' के तिलस्म का खजाना लेने में हमारी सहायता करेगा।'

खंग०—'वह क्या सहायता कर सकेगा ?'

रसिक—'वह केवल महाराज से हमारी रक्षा करता रहेगा—बस, तिलस्म के अन्दर का कार्य हम लोग स्वयं ही निपट लेंगे। इस राज्य में केवल महाराज ही ऐसे आदमी हैं, जो तिलस्म से जानकारी रखते हैं—वे हमलोगों के मार्ग में रोड़े अटका सकते हैं। परन्तु यदि हम सेनापति व्योम को अपनी ओर मिलाये रहेंगे तो वह या तो महाराज को मार ही डालेगा या उन्हें कैद किये रहेगा—तब तक हमलोग 'रक्त-मन्दिर' के तिलस्म में घुसकर वहाँ का अगाध धन बाहर निकाल लावेंगे। सेनापति व्योम को भी कुछ हिस्सा दे देंगे।''

खंग० ''खूब ! यह बात तो तुमने खूब सोची।''

इसके बाद वे लोग धीरे-धीरे बातें करने लगे। उनकी ये बातें बहुत देर तक होती रहीं।

लगभग ४ घण्टे में उनकी वार्ता समाप्त हुई। उठते-उठते रसिक ने धीरे से कहा—''इस प्रकार मेरी मनोकामना भी पूर्ण हो जायगी और काम भी बन जायगा।''

● ●

प्रातःकाल सूर्य की अरुणिमा पूर्वाकाश पर नृत्य कर उठी। चंगदेश के लिए वह प्रातः अत्यन्त वैषम्य था। महाक्रूर सेनापति व्योम के विद्रोह से चारों ओर आतङ्क छाया हुआ था।

महाराज विशाल ज्योंही शयन करके उठे एक प्रहरी ने आकर राजकुमारी नीरा के लुप्त हो जाने का समाचार सुनाया। राजकुमारी के गायब हो जाने का समाचार सुनकर महाराज अत्यन्त व्यथित हो गये। वे पागलों की तरह इस कमरे से उस कमरे और उस कमरे से इस कमरे में दौड़-दौड़कर राजकुमारी की खोज करने लगे। परन्तु सब व्यर्थ था। राजकुमारी का कहीं भो पता न लग सका

महाराज ने सोचा चलकर उन विदेशियों के कमरे में भी खबर दे दें, परन्तु जब वे वहाँ गये, कमरा सूना पड़ा था।

न तो रसिक ही वहाँ था और न तो खंगबहादुर ही। जमीन पर एक पुरजा अवश्य पड़ा दिखाई पड़ रहा था। महाराज ने वह पुरजा अपने काँपते हाथों से उठा लिया। उसपर साफ़-साफ किन्तु छोटे अक्षरों में लिखा था—

महाराज विशाल ?

सेनापति व्योम से मित्रता कर लेना हमारे लिए अधिक लाभदायक तथा कल्याणकारक है, बजाय इसके कि आपसे मित्रता की जाय। अतः हमलोग सेनापति व्योम के पास जा रहे हैं और साथ ही राजकुमारी नीरा को भो लिये जा रहे हैं, ताकि सेनापति हमसे प्रसन्न होकर मित्रता कर ले।"

—विदेशीगण।

महाराज ने माथा ठोंका। उफ् ? क्यों नहीं कल प्रातःकाल उन विदेशियों का 'रक्त-मन्दिर' में बलिदान करा दिया गया ? तब यह विपत्ति क्यों आती ?

महाराज के नेत्रों में आँसू आ गये। वे असहाय हो सिंहासन पर बैठकर रोने लगे। जाने कब तक इसी प्रकार रोते बैठे रहते, यदि उनके कानों में लगातार दो शेरों के दहाड़ने का शब्द न सुनाई पड़ता।

महाराज चौंककर उठ खड़े हुये। 'रक्त-मन्दिर' राजमहल के बिलकुल पास था, अतः उन शेरों की दहाड़ बहुत जोर-जोर सुनाई पड़ रही थी।

महाराज अभी इस आकस्मिक घटना पर विचार कर ही रहे थे कि 'रक्त-मन्दिर' का प्रहरी दौड़ा हुआ आया और उतावली के साथ बोला -'महाराज! रक्त-मन्दिर के वे दोनों तिलस्मी शेर इस समय दहाड़ मारकर गरज रहे हैं। उन्हें देखकर कोई यह नहीं कह सकता कि वे सोने के बने हुए नकली शेर हैं। ऐसा कभी नहीं हुआ था महाराज? पुजारी जी का कहना है कि ऐसा हजारों वर्षों से नहीं हुआ था! उन्होंने मुझे आपके पास भेजा है। वे भी घबड़ा गए हैं।"

महाराज के मस्तक पर चिन्ता की रेखायें खिंच आईं। वे जानते थे कि तिलस्मी शेर जिस दिन दहाड़ेंगे, उसी दिन 'रक्त-मन्दिर' का रहस्योद्घाटन करके कोई विदेशी वहाँ प्रकट होगा। उसी के साथ उन्हें राजकुमारी नीरा की शादी भी करनी होगी।

महाराज सरपर हाथ रखकर बहुत कुछ सोचने लगे। उनके सामने इस समय कई चिन्तायें थीं। अन्त में उन्होंने राजमहल के प्रधान रक्षक को बुलाकर कहा-'देखो, आज 'रक्त-मन्दिर' का रहस्योद्घाटन होने वाला है। वह व्यक्ति इस समय 'रक्त-मन्दिर' में प्रकट होगा। इधर सेनापति व्योम की सेना ने चारों ओर से 'रक्त-मन्दिर' और राजमहल को पुनः घेर लिया है। यहाँ की रक्षा का भार तुम्हारे ऊपर रहा। मैं 'रक्त-मन्दिर' जा रहा हूँ - देखूं क्या होता है?'

रक्षक ने पूछा—'रक्त-मन्दिर तक महाराज कैसे पहुँचेंगे! राजमहल और 'रक्त-मन्दिर' के बीच में सेनापति व्योम की अगाध सेना भी पड़ी है।'

महाराज—'मैं गुप्त मार्ग से जाऊँगा।'

इतना कहकर वे अपने शयनागार में आए। दक्षिण ओर की दीवाल में लगे हुए एक यन्त्र को उन्होंने किसी क्रम से उमेठा। घड़-घड़ की आवाज हुई और दीवाल का वह हिस्सा, जहाँ महाराज खड़े थे, बीच से फट गया। अन्दर जाने लायक दरार दृष्टिगोचर होने लगी।

महाराज तेजी के साथ उस दरार में घुस गये। उनके जाते ही वह दीवाल पुनः ज्यों की त्यों हो गई।

× × ×

खड्गबहादुर और रसिक ने यह भली प्रकार समझ लिया था कि सेनापति व्योम को अपना मित्र बना लेने से उनकी आशा फलीभूत हो सकती है।

परन्तु उससे मित्रता करने का रास्ता कौन-सा हो सकता था, सिवा इसके कि राजकुमारी नीरा को वे किसी प्रकार सेनापति व्योम के हवाले करें और यही उन दोनों ने निश्चय किया।

राजकुमारी नीरा को गायब करने वाले रसिक और खड्गबहादुर ही थे।

बेहोश राजकुमारी को उठाये हुए, अर्द्ध रात्रि में ये दोनों उस ओर बढ़े, जिधर सेनापति का शिविर पड़ा था। सैनिकों ने इन दोनों को शीघ्र ही व्योम के खेमे में पहुँचा दिया।

रात के समय उन विदेशियों को अपने खेमे में देखकर पहले तो व्योम भयभीत हो उठा, परन्तु बेहोश राजकुमारी को देखते ही वह चौंक पड़ा।

रसिक ने राजकुमारी को व्योम के पलंग पर लिटा दिया और बोला—'लो सेनापति! अपनी प्रेमिका से जी भर प्रेम करो।'

व्योम—'विदेशी बन्धुगण! धन्य हो। तब तो मैं सहज ही महाराज को राज्यच्युत करके चंगदेश का अधीश्वर हो सकूँगा।'

रसिक—'सब बड़ी सरलतापूर्वक हो जायगा सेनापति!....परन्तु

तुम्हें भी हमारी सहायता करनी होगी; हम लोग 'रक्त-मन्दिर' के बहुत से भेद जानते हैं। उनका रहस्योद्‌घाटन करके उसकी सम्पदा बाहर लावेंगे—उसमें से एक तिहाई भाग तुम्हारा रहेगा क्यों सेनापति ?'

व्योम -- 'ठीक !....बहुत ठीक....मैं आज ही महाराज विशाल को मृत्यु के हवाले करता हूँ....तुम लोग बाहर जाकर आराम करो।'

सेनापति की दृष्टि बेहोश राजकुमारी की यौवन कलिका पर जा पड़ी। परन्तु उसने धैर्य रखा, यह सोचकर कि अब तो वह उसे मिल ही गई है, फिर उतावली क्यों करें !

प्रातःकाल होने पर सेनापति की सेना ने दुगने उत्साह के साथ राजमहल पर आक्रमण कर दिया।

× × ×

इस समय 'रक्त-मन्दिर' में भयानक शोर मचा हुआ था। महाकाल के मुख के अगल-बगल वाले दोनों शेर बहुत जोरों से दहाड़ रहे थे। कभी-कभी वे अपनी जगह पर उठकर खड़े हो जाते थे, भयानक गर्जन से 'रक्त-मन्दिर' का मण्डप गूँज रहा था।

पुजारी तथा अन्य प्रहरी भय से काँपते हुए एक कोने में खड़े थे।

उसी समय 'रक्त-मन्दिर' की दीवाल का एक हिस्सा धीरे से फट गया और उस गुप्त द्वार के रास्ते महाराज ने प्रवेश किया। वहाँ की भयावह दशा देखकर वे भी विचलित हो उठे।

थोड़ी देर बाद वे महाकाल के मुख के पास जा खड़े हुए और हाथ बढ़ाकर न जाने क्या किया। परन्तु फिर भी उन शेरों का तड़पना बन्द न हुआ। अब महाराज आगे बढ़ आये और शेरों के बीच में बनी हुई अपनी तथा राकुमारी नीरा की मूर्तियों के पास आकर खड़े हो गये।

उन्होंने न जाने कौन-सा यन्त्र दबाकर अपनी तथा राजकुमारी की

मूर्तियों का मुख एक दूसरे की ओर घुमा दिया। अब उन शेरों का दहाड़ना एकदम बन्द हो गया। वे चुपचाप निर्जीव होकर अपने स्थान पर बैठ गये।

उनके शान्त होते ही छत में टँगा हुआ सोने का घण्टा तीव्र स्वर में बजने लगा। उसके कर्कश स्वर से सबके कान बहरे होने लगे।

थोड़ी ही देर बाद उस घण्टे का बजना अपने आप रुक गया और महाकाल के मुख में हरकतें प्रारम्भ हो गईं। महाकाल का मुख कभी खुलता, कभी बन्द होता। ऐसा प्रतीत होता था, मानो कोई भारी वस्तु उसके गले के बीच अटकी हुई है, जिसे वह उगलने का प्रयत्न कर रहा है।

लगातार पचीस-तीस बार उगलने का उपक्रम करने के बाद उसके मुख से एक विकराल वनमानुष की मूर्ति निकल पड़ी।

वह विजय था, गुरुघन्टाल की पोशाक पहने हुए। इस समय 'रक्त-मन्दिर' के अगम कोष का अधीश्वर।

पहले तो उस भयानक बनमानुष को देखकर सभी डर गये परन्तु अन्त में महाराज ने अपने को सम्हाला। क्योंकि अपने पूर्वजों की आज्ञानुसार इस नए विदेशी के साथ उन्हें आदर का प्रदर्शन करना था।

महाराज विशाल ने अपना मणि-मुक्ता जड़ित मुकुट उतार कर विजय के पैरों के पास रख दिया, पुनः जमीन पर लेटकर साष्टांग दंडवत किया और बड़ी मुश्किल से ये शब्द कहे–'महाराज की जय हो।'

विजय ने आदर के साथ महाराज को उठाया और बोला–'महाराज ! आप मेरे पूज्य हैं। आपको यह शोभा नहीं देता।'

'रक्त-मन्दिर' के अगम कोष के मालिक की सहृदयता देखकर महाराज विशाल अत्यन्त प्रसन्न हुए। परन्तु उसका भयंकर रूप देख वे संक्षुब्ध हो उठे। तो क्या इसी नरपिशाच के साथ उन्हें अपनी कन्या का पाणिग्रहण कराना होगा ! काश इसका रूप भी इसके हृदय जैसा ही पवित्र एवं स्वच्छ होता तो राजकुमारी नीरा इसे पाकर धन्य हो जाती।

सोचते ही सोचते महाराज को राजकुमारी की याद आ गई और वे उतावली के साथ विजय से बोले—'महाराज! मेरी कन्या का विवाह पूर्व पुरुषों ने आपके साथ करने का आदेश दिया था परन्तु उसे सेनापति व्योम बलपूर्वक हरण कर ले गया है। इस समय उसकी सेना राजमहल के चारों ओर मार-काट मचा रही है। सिवा आपके अब और कोई सहारा नहीं है।'

विजय यह समाचार सुनकर घबड़ा उठा और बोला—'अच्छा, आप यहीं रहिए, मैं उधर देखता हूँ।' उसी समय उस जगह एक धड़ाके की आवाज हुई और वह विशाल बनमानुष न जाने कहाँ लुप्त हो गया। महाराज तथा पुजारी आदि आशंकित हृदय लिए खड़े ही रहे।

× × ×

राजकुमारी नीरा को होश आ गया था और वह सेनापति व्योम के खेमे में पड़ी हुई अपने भाग्य पर रो रही थी। सेनापति व्योम लड़ाई के मैदान में था। राजकुमारी को अपने चारों ओर अँधेरा ही अँधेरा दृष्टिगोचर हो रहा था।

एकाएक खेमें का परदा उठाकर सेनापति व्योम ने हँसते हुए प्रवेश किया। एक बार उसने राजकुमारी को भर आँख लोलुप दृष्टि से देखा, फिर बोला 'राजकुमारी! अब आधे घण्टे में ही तुम्हारे पिता 'रक्त-मन्दिर' में बलिदान किए जायँगे। तुम्हें भी अपना मार्ग निश्चित कर लेना होगा। यदि तुम प्रसन्नतापूर्वक मेरे साथ रहना चाहो, तो रह सकती हो, अन्यथा तुम्हें भी अपने पिता की तरह दुर्दशाजनक मृत्यु का सामना करना पड़ेगा।'

राजकुमारी गरज कर बोली 'चुप रह कापुरुष! नीच! एक स्त्री के सामने ऐसी बातें कहते हुए तुझे शर्म नहीं आती।'

सेनापति हँसने लगा, बड़ी देर तक हँसता रहा। अन्त में वह राज कुमारी पर झपट पड़ा।

× × ×

बाहर घमासान युद्ध हो रहा था।

यद्यपि महाराज विशाल के अङ्ग रक्षक बहुत थोड़ी संख्या में थे, फिर भी वे वीरतापूर्वक सेनापति की अगाध सेना का सामना कर रहे थे।

आज व्योम की ओर से खंगबहादुर और रसिक भी अपने-अपने तमंचे लिए हुए उन थोड़े से रक्षकों पर गोलियों की वर्षा कर रहे थे—परन्तु महाराज के वीर रक्षकों ने उन आग उगलनेवाले अस्त्रों से भी भय न खाया।

बड़ी देर तक घमासान युद्ध होता रहा। अन्त में महाराज के रक्षकों के पैर उखड़ने लगे। खंगबहादुर व रसिक और भी तेजी से तमंचे चलाने लगे। मगर थोड़ी ही देर बाद आश्चर्य के साथ उन दोनों ने देखा कि सेनापति की सेना चिल्लाती हुई भाग रही है।

दोनों को बड़ा आश्चर्य हुआ और साथ ही भय भी—यह देखकर कि एक विकराल वनमानुष क्रोध से गरज-गरज कर व्योम के सैनिकों को जमीन पर पटक रहा है।

रसिक चीख उठा—'अरे यह तो विजय है! इस पोशाक में मैंने पहले इसे सैकड़ों बार देखा है। यह कैसे यहाँ आया? हे भगवान रक्षा करो।'

खंगबहादुर ने उधर देखा, वे भी चिल्ला पड़े। परन्तु अब समय खोने का नहीं था। रसिक ने अपना तमंचा उठाया और वनमानुष की ओर लक्ष्य करके घोड़ा दबा दिया।

धायँ-धायँ करके बीसों फायर हुए, वनमानुष का कुछ भी न बिगड़ा। विकराल वनमानुष चीखता हुआ इन दोनों की ओर दौड़ा।

अपने प्राचीन शत्रुओं को वहाँ देखकर उसे महान् आश्चर्य हुआ। उसकी हिंसक प्रवृति जाग्रत हो उठी। आज उसके दोनों शत्रु सामने थे। उसने लपककर रसिक का गला पकड़ लिया और प्रबल वेग से ऊपर उठाकर धड़ाम से भूमि पर पटक दिया।

रसिक का सर फट गया। उसकी आँखें बाहर निकल पड़ीं। आज विजय ने अपने पिता के घातक से भरपूर बदला चुका लिया था।

जब वह खंगबहादुर की ओर लपका। वृद्ध खंगबहादुर आर्तनाद करते हुए उसके पैरों पर गिर पड़े और क्षमा की भीख माँगने लगे। विजय ने अपने छोटे भाई के श्वसुर को क्षमा कर देना ही उचित समझा।

उसने खंगबहादुर को सादर उठाया और तब दोनों आदमी उस ओर बढ़े, जिधर सेनापति व्योम का खेमा था।

खेमे की विकराल दृश्यावली देखते ही खंगबहादुर ने दाँत पीसा और अपने तमंचे द्वारा सेनापति व्योम की हत्या कर डाली।

विजय ने आगे बढ़कर राजकुमारी को सँभाला। राजकुमारी उस विकराल बनमानुष को देखते ही भय से चीख पड़ी, क्योंकि उसने कभी विजय को उस रूप में देखा न था।

उस समय विजय ने भी वह भेद किसी को बताना ठीक न समझा। खंगबहादुर को भी उसने वैसा ही करने का आदेश दिया।

खड्गबहादुर और विजय, राजकुमारी को लेकर 'रक्त-मन्दिर' में आये।

महाराज विशाल ने अपनी जीत का समाचार सुना और राजपुत्री को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए।

उस दिन समग्र चंगदेश में खूब उत्सव हुए और नगर निवासियों ने अत्यन्त वृहत् रूप से आनन्दोत्सव मनाया।

परन्तु राजकुमारी यह न जान सकी कि विकराल बनमानुष और कोई नहीं, वरन् उसका प्यारा विजय ही है।



उस दिन रात्रि के समय जब राजकुमारी अपने शयनागार में सोई, उसके मस्तिष्क में अनेक प्रकार की बातें घूम रही थीं। वह अपने प्यारे विजय की याद में बहुत बेचैन थी।

अब एक नई चिन्ता उस पर सवार हो गई थी। जो बनमानुष 'रक्त-मन्दिर' के अगाध धन का अधीश्वर हुआ है, पूर्वजों के कथनानुसार वही उसका पति होगा—परन्तु वह उस भयङ्कर बनमानुष को किस प्रकार प्यार कर सकेगी ?

यही सब सोचते-सोचते उसे नींद आ गई और वह एक मधुर स्वप्न देखने लगी।

उसने देखा कि उसका प्यारा विजयसिंह पलङ्ग के पास खड़ा हुआ उसे पुकार रहा है—'राजकुमारी !'

राजकुमारी चौंक पड़ी और उसकी नींद उचट गई। परन्तु जागकर उसने जो कुछ देखा वह बड़ा भयङ्कर दृश्य था।

वही भयङ्कर बनमानुष उसकी पलङ्ग के पास खड़ा, अपनी कर्कश आवाज में उसे पुकार रहा था—'राजकुमारी !'

राजकुमारी डरकर पलङ्ग से उठ खड़ी हुई और अभिवादन करती हुई बोली—'महाराज ! आप यहाँ क्यों आये हैं ?'

विजय जो इस समय बनमानुष की तिलस्मी पोशाक पहने हुए था, बोला—'बैठो राजकुमारी ? मुझसे इतना डरती क्यों हो ! तुम तो मेरी भावी पत्नी हो ?'

राजकुमारी—'ऐसा न कहें महाराज ! मैं प्राणों की भीख माँगती हूँ मैं आपको प्यार न कर सकूँगी।'

विजय—'परन्तु मैं तो तुम्हें प्यार कर सकूँगा, प्यारी नीरा ! आओ डरो मत, थोड़ी देर पलङ्ग पर बैठ प्रेमालाप करो !'

विजय ने राजकुमारी को पकड़ कर पलङ्ग पर बैठा लिया।

राजकुमारी भय से चीखती हुई तकिए से लिपट कर रोने लगी। उसने सिर ऊपर न उठाया। उसे बनमानुष की ओर देखने का साहस ही नहीं हो रहा था। अब विजय ने अधिक देर तक कष्ट देना उचित न समझा। उसने अपनी गुरुघन्टाल की पोशाक खोलकर जमीन पर रख दी और राजकुमारी से जाकर लिपट गया !

राजकुमारी नीचे मुँह किए हुये रो रही थी, अतः पोशाक का उतारना वह न देख सकी। जब विजय अपनी असली सूरत में आकर उससे लिपट गया तो राजकुमारी ने यही समझा कि वह विकराल बनमानुष ही उससे लिपट गया है।

वह भय के मारे जोरों से चीख उठी। विजय ने उसे बहुत सान्त्वना दी और उससे मुँह उठाकर अपनी ओर देखने को कहा।

राजकुमारी ने डरते-डरते अपनी नजरें खोली। एकाएक वह खुशी से चीख पड़ी। उसका प्यारा विजय उसे गोद में दबाये हुए बैठा था।

वह किलकारी मारकर विजय की देह से लता की तरह लिपट गई। आनन्द विह्वल स्वर में बोला—'प्यारे विजय? तुम कहाँ थे इतने दिनों तक?'

विजय—'तिलस्म की सैर कर रहा था।'

राजकुमारी—'तो क्या तुम्हीं वह भयंकर बनमानुष थे?'

उसी समय राजकुमारी की दृष्टि उस बनमानुषनुमा गुरुघन्टाल की पोशाक पर पड़ी। सारी बातें उसकी समझ में आ गईं। वह विजय के शरीर से पुनः कसकर लिपट गई और बोली—'तुमने तो मुझे अधमरा ही कर डाला था प्यारे! भला इस प्रकार की हँसी भी कहीं की जाती है?'

फिर दोनों आपस में लिपटकर बहुत दिनों की धधकती हुई प्रेम ज्वाला शान्त करने में निमग्न हो गये।

× × ×

दूसरे ही दिन प्रातःकाल विजय का यह भेद सब पर प्रकट हो गया। उसकी नवीन सूरत देखते ही महाराज विशाल अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने राज्य भर में विवाहोत्सव मनाने का आदेश दे दिया।

शुभ मुहुर्त में विजयसिंह और राजकुमारी का पाणिग्रहण हो गया। दोनों प्रेमी प्रेमिका सुहागरात के दिन असीम आनन्द में लिप्त रहे।

उसके दूसरे ही दिन विजयसिंह का राज्याभिषेक हुआ और चंगाधिपति की उपाधि से विभूषित किया गया।

इसी प्रकार बहुत दिन व्यतीत हुए।

राजकुमारी और विजय आपस में प्रेमादान-प्रदान में बहुत दिनों तक लिप्त रहे।

एक दिन, जब कि राजमहल के एक सजे हुए प्रकोष्ठ में महाराज विशाल, विजयसिंह, राजकुमारी नीरा, खंगबहादुर आदि उपस्थित थे, महाराज खंगबहादुर बोले—'अब मैं अपने देश जाना चाहता हूँ! परन्तु कठिनाई यह है कि मार्ग अत्यन्त कष्टकर है। किस प्रकार पहुँच सकूँगा?'

विजय ने कहा—'घबड़ाने की आवश्यकता नहीं मैं एक ऐसा मार्ग जान गया हूँ, जो अत्यन्त सरल है। एक सुरंग 'रक्त-मन्दिर' से सीधी रूप-नगर को जाती है। उससे आप भली प्रकार स्वदेश पहुँच सकते हैं।'

खंगबहादुर—'तो फिर मैं चलने की तैयारी करना चाहता हूँ—मेरी तबीयत यहाँ बिल्कुल नहीं लग रही है।'

महाराज विशाल—'मैं भी आपके साथ चलूँगा महाराज! आप का देश देखने की मेरी उत्कट अभिलाषा है। मैं वहाँ की सभ्यता तथा अन्य बातों का अवलोकन करने को अत्यन्त लालायित हूँ।'

खंगबहादुर 'आप खुशी से चल सकते हैं महाराज! आपका साथ पाकर मुझे अत्यन्त हर्ष होगा।'

खंगबहादुर तथा महाराज विशाल जाने की पूरी तैयारी करने लगे। पाँचवें दिन सब आवश्यक सामानों सहित वे लोग उस सुरंग के पास आये।

विजय ने खंगबहादुर को 'रक्त-मन्दिर' का बहुत-सा धन भी दिया।

अन्तिम बार विजय और राजकुमारी ने खंगबहादुर और महाराज विशाल के चरण छुए।

राजकुमारी ने कहा—'देखिये पिताजी, नया देश देखकर जल्द आइयेगा। तब मैं भी चलूँगी।'

महाराज विशाल—'तुम जरा भी न घड़वाना बेटी ! और बेटा विजय ! तुम ठीक से राजकाज देखना, तब तक मैं लौट आऊँगा।'

विजय ने खंगबहादुर से कहा—'आप मेरी माताजी से मेरा प्रणाम कहियेगा और कह दीजियेगा कि मैं बहुत जल्द उनकी सेवा में उपस्थित रहूँगा उनसे यह भी कह दीजियेगा कि मैंने अपने पिता की हत्या का बदला ले लिया है।' कहते-कहते विजय की आँखें भर आयीं।

सभी रोने लगे। वह बिदाई का दृश्य अत्यन्त करुणाजनक था।

अन्त में महाराज विशाल और खंगबहादुर सुरंग की राह चल पड़े।

राजकुमारी नीरा और विजय आँखों में आँसू लेकर लौट आये। उस रात दोनों की तबीयत बेचैन रही।



आमोद-प्रमोद एवम् राज्य संचालन करते विजय ने दस महीने बिता दिये।

एक दिन विजय और राजकुमारी एक ही पलंग पर लेटे हुए एक दूसरे के आलिंगन पास में आबद्ध होकर मधुर बातें कर रहे थे ! विजय ने कहा—'प्रिये ! प्रारम्भ ही से मेरा जीवन विपत्ति में व्यतीत हुआ है। न जाने कितने परिवर्तनों का मुझे अनुभव है। अब तो इस जगह निठल्ले मुझसे नहीं बैठे रहा जाता। तुम कहो तो कुछ दिनों के लिये कहीं जाकर घूम फिर आऊँ ?'

राजकुमारी—'किधर जाने का विचार है ?'

विजय—'दानव देश' में !....'रक्त-मन्दिर' के तिलस्म के भीतर दो दरवाजे हैं। दोनों मजबूती के साथ बन्द हैं और उन्हें खोलने को मना किया गया है परन्तु मेरा विचार है कि उन दोनों दरवाजों को बारी-बारी से खोलकर सैर की जाय। एक दरवाजा दानव देश में

दूसरा जादूनगरो में जाने का है। पहले मैं दानवदेश की ही सैर करना चाहता हूँ।'

राज०—'मैं तुम्हें कहीं जाने नहीं दूँगी। मैंने पिताजी से सुना था कि वे दोनों दरवाजे भयंकर देशों को जाते हैं—और इधर हजारों वर्षों से वे एकदम बन्द हैं। कभी खुले ही नहीं।'

विजय—"तभी तो मेरा कौतूहल और भी बढ़ गया है। मैं चाहता हूँ कि इन दोनों रास्तों की भी जल्द ही सैर कर लूँ। नहीं तो तुम्हारे पिताजी के आने पर कुछ न हो सकेगा।'

राज०—'नहीं-नहीं !! मैं तुम्हें नहीं जाने दूँगी प्राणेश ! तुम चले जाओगे तो मैं किस प्रकार रह सकूँगी !'

विजय—'मुझे विचलित न करो प्रिये ! मेरा विचार दृढ़ है, अतः मैं जाऊँगा ही। अगर हमारा प्रेम सम्बन्ध दृढ़ रहेगा तो हम दोनों पुनः मिलेंगे।'

राजकुमारी को विजय ने बहुत कुछ समझाया, तब कहीं जाकर उसने अपनी स्वीकारोक्ति दी।

विजय ने दूसरे दिन समग्र तैयारियाँ कर ली और तीसरे दिन वह राजकुमारी को लेकर उस भयानक काले कमरे में आया, जो रक्त-मन्दिर के तिलस्म का भीतरी भाग था। जिसमें 'मृत्युद्वार-दानवदेश' आदि भयंकर दरवाजे थे।

विजय ने दानवदेश के दरवाजे को खोलने का निश्चय किया था। राजकुमारी नीरा भी वहाँ तक पहुँचाने आई थी।

वह दानवदेश के दरवाजे के पास जा खड़ा हुआ और इधर-उधर निगाह दौड़ाने लगा, ताकि उस द्वार को खोलने का कोई यन्त्र मिल जाय।

उसको अधिक परेशानी न उठानी पड़ी ! उस दरवाजे की बगल में ही लगी हुई एक हीरे की मूँठ पर उसकी दृष्टि पड़ी ! उसने लपक कर मूठ को घुमाना आरम्भ कर दिया।

कई बार घुमाने पर तोप के दगने जैसी दन्नाटे की आवाज हुई। विजय और राजकुमारी गिरते-गिरते बचे।

उसी समय दानवदेश का फाटक झोंके के साथ खुल गया। वहाँ खड़ी दिखाई दी एक विकराल मूर्ति जिसे देख राजकुमारी और विजय चीखकर एक दूसरे से लिपट गये।

बहुत देर बाद विजय ने हिम्मत करके दरवाजे की ओर कदम बढ़ाया।

वह भयानक मूर्ति जो दानवदेश के दरवाजे में दिखाई पड़ रही थी, एक भयानक मोटे अजगर की थी, परन्तु मुंह उसका बहुत ही भयानक एवं नरराक्षस की तरह था। वह अपना सिर उठाये क्रोध-पूर्ण दृष्टि से विजय की ओर देख रहा था। उसकी आँखें बिजली-सी चमक रही थीं।

विजय की हिम्मत नहीं पड़ रही थी, फिर भी कायरता दिखाना उसने उचित न समझा और असीम साहस संवरण करके 'दानवदेश' के द्वार की ओर बढ़ा।

अभी वह दरवाजे से कई हाथ दूर ही था कि उस अजगर शरीर धारी दानव ने लपककर विजय को अपने विकराल मुँह में पकड़ लिया। विजय चिल्ला पड़ा, राजकुमारी उसको बचाने के लिए दौड़ी परन्तु तब तक तो वह दानव विजय को मुँह में दाबे हुए दरवाजे के अन्दर जा रहा और तेज आवाज के साथ वे दरवाजे भी बन्द हो गये।

राजकुमारी विजय के लिये तड़पती हुई बाहर ही रह गई।

* समाप्त *



लोकप्रिय कथाकार

कुशवाहा कान्त

लिखित

अनुपम उपन्यास

लालरेखा	४–५०	मंजिल	५–००
पपिहरा	५–००	चूड़ियाँ	६–५०
पारस	४–५०	रक्तमंदिर	१–५०
जंजीर	४–५०	खून का प्यासा	५–००
परदेसी ४ भाग	१२–००	दानव देश	५–००
उसके साजन	३–००	हमारी गलियाँ	३–५०
जवानी के दिन	३–००	भँवरा	४–००
विद्रोही सुभाष	६–००	लवंग	५–००
मदभरे नयना	५–००	पागल	४–००
नागिन	४–५०	जलन	३–००
गोल निशान	४–००	अकेला	३–५०
काला भूत	२–५०	बसेरा	३–५०
कैसे कहूँ	२–००	अपना पराया	४–००
उड़ते उड़ते	३–००	निर्मोही	४–५०
पराजिता	३–००	आहुति	४–००
लालकिले की ओर	४–५०	इशारा	३–००
नीलम	७–५०	कुंकुम	३–५०

चिनगारी प्रकाशन

पो. बा. ७८, वाराणसी–१